श्री दौलतराम गौड़ प्रणीत

कुण्ड निर्माण-स्वाहाकार पद्धति

संकलन कर्ता - अशोक कुमार गौड़

- प्रकाशक -

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

१:३०/- कचौड़ी गली, वाराणसी

17 th Pusplata of Vedacharya Pt. Daulatram gaur Smarak Granthmala

WRITTEN By Pt. DAULATRAM GAUR—

KUND NIRMAN
Swahakar Paddhati

Editor

ASHOK KUMAR GAUR

Published by

THAKUR PRASAD PUSTAK BHANDAR

Kachouri gali Varanasi - 221001

First Ed.] Basant panchami - 1982 [[redacted]

Published by :

THAKUR PRASAD PUSTAK BHANDAR

Kachouri gali varanasi - 221001

Fhone - 66420

ALLRIGHTSS RESERVED

First Adition

rinted

Satya Shiva press

K. 54/154, Daranagar,

Varanasi - 1

वेदाचार्य पं० दौलतराम गौड़ स्मारक ग्रंथमाला की १७ वीं पुष्पलता

दौलतराम गौड़ वेदाचार्य प्रणीत–

कुण्डनिर्माण स्वाहाकार पद्धतिः

[टिप्पणी तथा परिशिष्ट से अलंकृत]

संकलनकर्ता—

श्री अशोक कुमार गौड़

प्रकाशक—

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ी गली, वाराणसी-२२१००१

प्रथम संस्करण] २० जनवरी बसंत पंचमी [[redacted]

प्रकाशक—

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार

कचौड़ी गली, वाराणसी–२२१०११

दूरभाष–६६४२०

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

प्रथम संस्करण–१९८२

मुद्रक—

सत्यशिव प्रेस,

दारानगर, वाराणसी

भूमिका

वेदाचार्य पं० दौलतराम गौड़ स्मारक ग्रन्थमाला की १७ वीं पुष्पलता 'कुंड निर्माण स्वाहाकार पद्धति' आप सभी के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

पिता श्री के द्वारा कुण्ड निर्माण के विषय में लिखित सभी तथ्यों को एकत्रित करने के उपरान्त ही मैंने इस किताब के प्रकाशन की योजना बनाई।

जिस प्रकार नर एवं नारी एक दूसरे के पूरक कहे गये हैं। उसी प्रकार यज्ञ एवं कुण्ड भी एक दूसरे के पूरक हो है। क्योंकि यदि यज्ञ के पूर्व कुण्ड की रचना न की जाये तो यज्ञ का होना असंभव है। अतः यज्ञ एवं कुण्ड को एक दूसरे का पूरक कहा जावे तो, यह अतिशयोक्ति न होगी।

इस छोटी सी पुस्तक में कुण्डनिर्माण से सम्बन्धित विषयों का समावेश है। कुण्ड निर्माण के साथ ही साथ पुस्तक को अत्यधिक उपयोगी बनाने के उद्देश्य से मैंने, इस पुस्तक में विभिन्न प्रकार के यज्ञों के स्वाहाकारों का भी समावेश कर दिया है। जो निःसन्देह उपयोगी है।

आशा है कि यह पुस्तक अपने उद्देश्य में निःसंदेह सफल होगी।

अशुद्धियों एवं त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

भारतीय कर्मकांड मण्डल
म. म. पा. विद्याधर गौड़ लेन
डी ७।१५ सकरकंद गली
वाराणसी–उत्तर प्रदेश

भवदीय
अशोक कुमार गौड़

प्रणेता —

स्वर्गीय पण्डित दौलतराम गौड़ वेदाचार्य

श्रौत और स्मार्तादिकर्मोंमें कुण्ड तथा मण्डप मुख्य हैं या गौण—

श्रौत; स्मार्त और तन्त्रिक ये तीन प्रकार के कर्म हैं। पौराणिक कर्म तांत्रिक में ही अन्तर्भूत हैं। पौराणिक कर्मको पृथक् मानने वाले चार प्रकार के कर्म मानते हैं। श्रौत और स्मार्त कर्म के प्रतिपादक आश्वलायन आदि श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र मन्वादिस्मृति और गौतमादि धर्मसूत्र भी हैं। इनमें कुण्ड-मण्डप की परिभाषा देखने में नहीं आती है। परन्तु मण्डप का यज्ञशाला शब्दसे और कुण्ड का वेदी शब्द से व्यवहार होता है। 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति' वेद्यामिव हुताशनः अमी वेदि परितः क्लृप्तधिष्ण्याः—इत्यादि स्थलों में वेदीशब्दसे कुण्ड का ग्रहण है और यज्ञशाला, पत्नीशाला इत्यादि स्थलों में मण्डप के लक्षण से यज्ञशाला आदि का लक्षण भिन्न है। तान्त्रिक तो सम चतुरस्र चार द्वार, चार उपचार मध्य में ऊँचा मण्डप कहते हैं। वैदिक तो एकद्वार, पताका आदि रहित तथा मध्योन्नति रहित मण्डप बनाते हैं। योनी, गर्त आदि सहित कुण्ड तान्त्रिकों को अभिमत है। वैदिकों को कुण्ड में योनि गर्तादि अभिमत नहीं हैं।

काम्यकर्म में कुण्ड-मण्डपकी आवश्यकता—

नित्यं नैमित्तकं हित्वा सर्वमन्यत्समण्डपम्—कोटिहोमपद्यति और मात्स्योक्तवचन से काम्यकर्म में मण्डप आवश्यक है। नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में ऐच्छिक है। नित्यं नैमित्तिकं होमं स्थण्डिले वा समाचरेत्। शारदातिलक मत से नित्य और नैमित्तिक कर्म स्थण्डिल या कुण्ड में करें। परन्तु काम्यकर्म को कुण्ड में ही करे।

कुण्ड-मण्डप का प्रयोग—

तीन प्रकार के कर्म होते हैं—दृष्टफल अदृष्टफल और दृष्टादृष्टफलक। वृष्टिकामः कारीर्या यजेत—इत्यादिश्रुति से विहित कारीरेष्टचादि वृष्टिरूप ऐहिक फल का जनक होनेके कारण वृष्टफलक कर्म है। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् इत्यादि विधिबोधत अग्निहोत्रादि अदृष्टफलक कर्म है। दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् इत्यादि इन्द्रियकामनाके लिये अग्निहोत्रविधि दृष्टादृष्टफलक है। अग्निहोत्रविधि स्वस्वरूपसे अदृष्टफलको दधिरूप गुणांशसे दृष्ट इन्द्रियफलको भी उत्पन्न करता है। प्रश्न—प्रतियोगी और अभाव का विरोध होने के कारण दृष्ट और अदृष्ट का एकत्र समावेश कैसे होगा। उत्तर–हम दृष्टादृष्टका एकत्र समावेश नहीं कहते है। किन्तु दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् यह गुणविधि दृष्टादृष्टफलक है इतना ही कहते हैं। यह विरुद्ध नहीं है घट और घटध्वंस दोनों का कारण जैसा दण्ड है इसीप्रकार कुण्ड और मण्डप दृष्ट और अदृष्ट उभयफलक हैं। वप्रगर्तादि अंशसे हविका सम्यक् पाक होता है और होताओंको ज्वालादि संबन्ध नहीं होता इसलिये कुण्ड दृष्टफलक है और नाभी, योनी, कण्ठ आदि अंशसे अदृष्टफलक भी है। वहाँ दृष्टफल संभव नहीं है। विधिबलात् नाभ्यादि निर्माण होता है अतः स्वर्गादि अदृष्टफलकी वहाँ कल्पना की जाती है। स स्वर्गः सर्वान् प्रत्यभीष्टत्वात्' इत्यादिशास्त्रसे अश्रुतफल में स्वर्गफल माना जाता है। एवं मण्डप भी आतप वर्षादिका निवारक होने से दृष्टफलक है और स्तंभपरिमाण, स्तंभनिवेशका प्रकार विशेष इतर दारु का संनिवेशप्रकारविशेष इत्यादि नियमांशसे अदृष्टफलक भी है। जैसे व्रीहीनवहन्ति—यहाँ पर अवहननविधि तण्डुलनिष्पादक होने के कारण दृष्टफलक है और अवहनन से ही निष्पादक करना नखविदलनादिना नहीं करना इत्यादि नियमांशसे अदृष्टफल भी है।

कुण्डस्वरूप—

ततत्कर्मानुरूपपरिमाणवत् मेखला-गर्त-कण्ठ-योनि-नाभिमत्
अग्न्यायतनं तान्त्रिकाभिमतं कुण्डमुच्यते।

स्थण्डिलस्वरूप—

हवनकर्मपर्याप्तो वालुकादिद्रव्यैरास्तृतश्चतुरेकाद्यङ्गुलोत्सेधो भूभागः स्थण्डिलम्। इसमें कुण्डधर्म मेखलादि कोई मानते हैं कोई नहीं मानते हैं। अतः मेखलादि कृताकृत है।

न्यूनाधिकप्रमाण भी कुण्ड और मण्डप कर्मोपयोगी होते हैं या नहीं—

शास्त्रमे कुण्डका प्रमाण होमसंख्याके अनुसार विहित है। उसमें भी—मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्धे संप्रक्षते। (शारदा०) एकहस्तमितं कुंड शतार्धे सम्प्रचक्षते। (शारदा०) यह दो प्रकार विहित है। सिद्धान्तशेखरमें—लक्षार्धे त्रिकरं कुंडम् इत्यादिसे प्रकारान्तरविहित है। इसप्रकार परस्पर विरुद्ध वचनों की व्यवस्था कोटिहोमपद्धतिकार ने की है—एतत् शीघ्रदाहिघृतादिद्रव्यहोमविषयम्। तिलयवादिस्थूल-द्रव्यहोमे तु होमसङ्ख्याविशेषाम्नातमेव कुंड ग्राह्यम्। घृतादि होम-द्रव्यमे अल्पपरिमाण और स्थूलद्रव्यमे अधिक परिमाण का कुंड होता है। यह व्यवस्था विकल्प जहाँ दो वचनका तुल्यबलविरोध हो वहाँ माना जाता है। 'तुल्यबलविरोधे विकल्पः'—यह शास्त्रसिद्धान्त हैं। वह विकल्प दो प्रकारका है—व्यवस्थितविकल्प और तुल्यविकल्प। जहाँ व्यवस्थापक कोई हो उसकी व्यवस्थित कहते हैं। जहाँ व्यवस्था-पक न हो उसको तुल्यविकल्प कहते हैं। जैसे-उदिते जुहोति, 'अनु-दिते जुहोति' यह दो वाक्य हैं। प्रथमश्रुतिसे सूर्योदयानन्तर अग्निहोत्र विहित है और द्वितीयश्रुतिसे सूर्योदयात् प्राक् सिद्ध है। ये दोनों श्रुतियाँ अग्निहोत्र विधायक नहीं है। अग्निहोत्र तो—यावज्जीव-

मग्निहोत्रं जुहुयात्– इसीसे सिद्ध है। किन्तु अग्निहोत्र का अनुवाद करके तदङ्गभूत काल विधायक ये श्रुति है इसीलिये इनको गुणविधि कहते हैं। यद्यपि यहाँ विधिवाचक लिङ्गादि नहीं है। तथापि लट्का लिङ्गत्वेन विपरिणाम होता है। इन दोनों श्रुतियों का परस्परविरोध होने पर दोनों तुल्यबल है, अतः विकल्पका आश्रयण होता है। वह भी जिनके सूत्रमें उदितहोम विहित है, उनको उदित होमी होना चाहिये और जिनके सूत्र में अनुदितहोम विहित है उनको अनुदितहोम करना चाहिये। यह व्यस्थित विकल्प है। अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति इत्यादि में व्यवस्थापक न होनेसे तुल्यविकल्प है। अतः अतिरात्रयाग में षोडशिग्रह ग्रहण ऐच्छिक है। प्रकृतमें कुंडके विषय में न्यूनाधिक व्यवस्थित परिमाण प्रतिपादक वाक्योंमें व्यवस्थापक गुरुलघुद्रव्यादि है अतः विकल्प माना जाता है। इस प्रकार यावत्संख्याक होममें यावत्परिमाण कुंड विहित है वहाँ उसमें न्यूनाधिक परिमाणवाला कुंड न्यूनाधिक कुंड कहा जाता है। एतादृश न्यूनाधिक परिमाण कुंडका भी कहीं कहीं उपयोग होता है। न्यूनसंख्योदिते कुंडेऽधिको होमो विधीयते। अनुक्तकुंडो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित्। (कोटिहोमप०) न्यूनसंख्यावाले कुण्ड में अधिक हवन होता है। अधिक संख्यावाले कुण्ड में न्यूनहवन नहीं होता है। इसीप्रकार अधिक कुण्ड में न्यूनहोम भी कहीं अभिमत है। कोटिहोमपद्धति में–न्यूनसंख्येऽपि स्थूलद्रव्यपरिमाणाधिक्यादावधिकसंख्योक्तमपि कुण्ड भवति। अर्थात्परिमाणम्—इति कात्यायनोक्तेः। न्यूनसंख्य होम में भी अधिकहोमसंख्यावाला कुण्ड होता है—यह लिखा है। कुण्डरत्नावली में भी आहुति तारतम्यसे कुण्डविस्तार कहकर अन्तमें कहा है। कि कुण्डव्यस्था पृथुसूक्ष्ममानाद् द्रव्यस्थ कार्या सुधिया सुधीभिः। कुण्ड व्यवस्था द्रव्यके स्थूल और सूक्ष्ममानसे अपनी बुद्धिसे विद्वानों को करनी चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि चर्वादिगुरुद्रव्य होम में अधिक प्रमाण भी कुण्डग्राह्य है। शताधेरत्निः स्यात् –

इत्यादि वचनसे शतार्धे शत सहस्रादि हवन में कुण्ड का विधान सिद्ध हुआ। परन्तु शतादि आन्तरालिक संख्याकहोम में कुण्डपरिमाण कितना हो इस शंकाको दूर करने के लिये 'न्यूनसंख्यों दिते' यह वचन है। इसलिये नवशत अष्ठशतादि अनुक्त कुण्डकहोम सहस्रहोमोदित कुण्ड में नहीं करना किन्तु पूर्वकथितशतसंख्याकहोमकुंड में ही करना यह सिद्ध होता है। इसप्रकार न्यूनसंख्योदिते' यह वचन अनुक्त कुण्डक आन्तरालिक होम में न्यूनकुण्ड का विधायक हुआ। तब यही वचन अधि कुण्ड में गुरुद्रव्यक न्यून होम का निषेध नहीं कर सकता है। क्योकि दो कार्य का विधान करने से वाक्यभेद दोष होता है। पूर्वार्द्ध से न्यूनकुण्ड में अधिक होमविधान और उत्तरार्द्ध से अधिक कुण्ड में न्यून होम का निषेध। विधानद्वय करने में 'अनुक्त कुण्डों न्यूनस्तु' यह अनुक्त कुंडस्वरूप जो होमका विशेषण है यह बाधित होता है। कदाचित् कहें कि—'न्यूनाधिकं न कर्तव्यं कुंड कुर्याद्वि-नाशनम् (परशुरा०) इस वचनान्तर के रहते अधिक कुंड उपादेय नहीं हो सकता है तो इसका उत्तर यह है कि—यह वचन भी प्रकृ-तार्थ साधक नहीं है किन्तु इस वचन का ही नाधिकाङ्ग लक्षण रहित कुंड निषेध में ही तात्पर्य है। इसवचन के पूर्व "आयामखातविस्तारा-यथातथं तथातथम्" यह वचन है और 'खातेऽधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः।' यह उत्तर वचन है। इसप्रकार पूर्वापरपर्यालोचनया अलक्षण कुंड का निषेधक ही परशुराम वचन है अधिक कुंड में अल्पा-हुति का नहीं यह स्पष्ट है।

कोई विद्वान् 'अनुक्तकुंडो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित्' यहाँ क्वचित् शब्दसे अधिक कुंडमात्रसे न्यूनहोमका निषेध करते हैं। परन्तु वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चार हाथके कुडमें जिसमें दो दों हाथके चार भुजमान हैं वहां पर 'खातं क्षेत्रसमं प्राहुः' इत्यादि शास्त्रसे दो हाथ के खात करने पर कुंडावकाशरूप क्षेत्रफल आठ हाथ का होता है एवं द्वित्रि-हस्तादि कुंड में सर्वत्र क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी द्विहस्त त्रिहस्त

चतुर्हस्त कुंड यही व्यवहार प्रामाणिक करते हैं। विचार करने पर तत्ता-द्धोम के प्रति ये भी अधिक कुंड है तो क्वचित शब्दसे यदि अधिककुंडत्वा-वच्छिन्न में न्यूनहोम सामान्य निषेध माना जाय तो इन कुण्डों का भी निषेष हो जायगा। कोटिहोमपद्धति में स्पष्ट कहा है कि—यद्यपि द्विहस्तत्रिहस्तादिकुंडेषु हस्तमात्रमेव खातं युक्तम् अन्यथा क्षेत्रफला-धिक्यात्। तथापि वचनादधिकमपि खातं न दोषाय। आगे चलकर लिखा है—एतेन कुण्डभूतलमेव क्षेत्रफलमितिवदंतः परास्ताः। गर्तस्य न्यूनाधिक्येऽपि भूतले प्रमाणाधिक्यन्यूनत्वाद्यसंभवात्। सिद्धस्य भूत-लस्य फलत्वायोगाच्च। साध्यस्त्ववकाशः फलत्वेनाभ्युपगन्तुं युक्तम् न च ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ सिद्धस्य स्वर्गस्य कथं फल-त्वाभ्युपगम इ त्यात्र शंकनीयम्। तत्रापि साध्यस्य कर्तृस्वर्गसंबंधस्यैव फलत्वमिति सन्तोष्टव्यम्।

कुंडभूतल ही क्षेत्रफल है यह भी ठीक नहीं है। जिसप्रकार द्वित्रि हस्तादि कुंड में क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी न्यूनहोम वचनबलसे होता है। इसीप्रकार चर्वादिगुरुद्रव्यहोम में भी अधिक कुंड ग्रहण शास्त्रकारों को अभिप्रेत है। इससे सिद्ध हुआ कि न्यूनाधिक कुंड भी वचनबलसे कहीं कर्मोपयोगी होता है। एवं न्यूनाधिक मण्डप भी कर्मोपयोगी होता है विंशद्धस्तप्रमाणेन मंडपं कूटमेवा (कोटिहोमप४)। लक्षणरहित मंडप को कूट मंडप कहते हैं। यह कूटमंडप स्वलक्षण मंडपके अभाव में है। सलक्षणमंडपा संभवे छाया-मात्रं कर्तव्यम्। तत्र अपूर्वप्रयुक्तत्वाद्धर्माणां यवेष्विव व्रीहिर्धर्माः मंडप पूजादयोऽप्यत्र भवन्ति (कोटिहोम प०)। अलक्षण मंडप में भी यवों में व्रीहिधर्म के सदृश मंडप पूजादि होते हैं। तात्पर्य यह है कि—दर्शपूर्णमासयागमें पुरोडाश के लिये व्रीहि अभिहित हैं। व्रीहि संस्कारके लिये—व्रीहीन् प्रोक्षति। व्रीहीनवहन्ति। इत्यादि श्रुति है। व्रीहिके अभावमें यह गृहीत होते हैं। वहाँ यवों का भी प्रोक्ष-णादि संसकार हो या नहीं इस संशय में 'व्रीहीन् प्रोक्षति' इत्यादि

विधिवाक्यमें यवका ग्रहण नहीं है अतः यवका प्रोक्षणादि संस्कार न हो चाहिये ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ। सिद्धान्त यह है कि—व्रीहि प्रतिनिधियों का भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है। असंस्कृत द्रव्ययाग योग्य नहीं होते हैं और अङ्गकर्म से जनित अपूर्वप्रधान कर्मसाध्य परमापूर्व को उत्पन्न करते हैं, वही परमापूर्व धर्म पुण्य इत्यादिशब्दों से कहा जाता है। यदि अङ्ग जन्य अपूर्व लुप्त कर दिये जाँय तो परमापूर्व विकल होगा। परमापूर्व विकल होने से स्वर्गादि इष्ट फलका साधक न होगा। इसलिये अङ्गापूर्व के लिये यवो में भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है। इसीप्रकार मंडपप्रतिनिधित्वेन उपादीय-मान छायामंडपमें भी अपूर्वोत्पत्तिके लिये वास्तुहोम मंडपपूजादि होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि छायामंडप भी कर्मोपयोगी है। इससे वह भी सिद्ध हुआ कि अलक्षणमंडपनिन्दापरक वचन सलक्षण-मंडपसंभव में अलक्षण मंडप निर्षधपरक हैं।

—स्वर्गीय दौलतराम गौड़ वेदाचार्य

कुण्डों के बनाने में सहायक यन्त्र

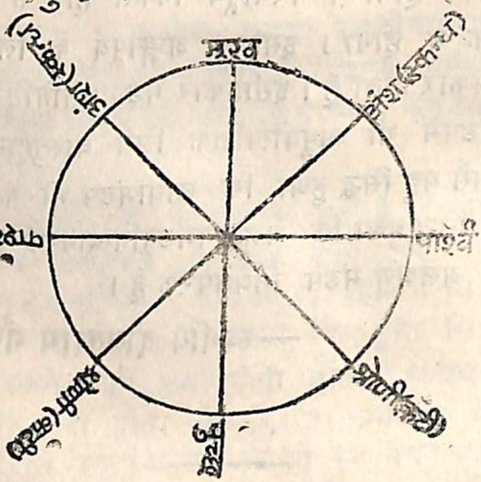

कुंड निर्माण में आवश्यक बातें

कुण्ड-मण्डप बनाने वाले की परीक्षा आवश्यक—

परशुराममत से मण्डप और कुण्ड बनानेवाले से सतिसंभवमें निम्नलिखित बातोंकी जानकारी कर लेनी चाहिये। सत्य बोलनेवाला हो। सदाचारी हो। विवेकसे कार्य करने में अति कुशल हो। स्थिर साहसी हो। कुण्ड मण्डप आदि शास्त्रके तत्वको जानने वाला हो। देवी-देवताओं में श्रद्धा हो। इन्द्रियों में विकार की भावना से परे हो। मैले कपड़े धारण करनेवाला न हो। रोगी न हो। बेकार के आडम्बरों को करनेवाला न हो। बहुत बोलने वाला न हो। किसी अन्य मतों पर कलह करनेवाला न हो।

मण्डपभूमि विभाग विचार—

तीन हाथ से सात हाथ के मण्डप का विभाग नहीं होता है। आठ हाथ से अठारह हाथ तक तीन भाग करे। बीस हाथ से —अठाइस हाथ तक पाँच भाग करे। तीस हाथ से पचहत्तर हाथ तक सात भाग करे। सौ हाथ मण्डप में दस भाग करे।

मण्डप में स्तम्भ विचार—

सात हाथ के मण्डपमें चार स्तम्भ लगते हैं। आठ हाथ मण्डप से लेकर अट्ठारह हाथ तक के मण्डप में सोलह स्तंभ लगते हैं। तीस हाथ मण्डप से लेकर पचहत्तर हाथ के मण्डप में चौसठ स्तंभ लगते हैं। सौ हाथ के मण्डप में एकसौ इक्कीस स्तंभ लगते हैं।

मण्डप भूमि का नाम कथन—

सात हाथ के मंडप को 'एकभू' कहते हैं। आठ हाथ मण्डप से लेकर अट्ठारहाथ के मण्डप को 'द्विभू कहते। बीस हाथ से अट्ठाइस हाथ के मण्डपको 'त्रिभू' कहते हैं। तीस हाथ से पचहत्तर हाथ के मण्डप को

'चतुर्भू' कहते हैं। सौ हाथ के मण्डप को 'दशभू कहते हैं। उसमें भी मध्यकोष्टचतुष्टय का एकीकरण से 'पञ्चभू' कहा जा सकता है।

अंगुलादि ज्ञान—

आठ परमाणु का—एक त्रसरेणु आठत्रसरेणु का एक रथरेणु—आठ रथरेणु का—एक बालाग्र, आठबालाग्रका—एक लिक्षा आठ लिक्षा का—एक यूका, आठयूका का--एक यव आठयव का—एक अंगुल, चौबीस अंगुलका—एक हाथ और पांच हाथ का—एक पुरुष होता है।

यज्ञीयभूमि का विचार—

अग्निकोण प्लवाभूमि—विद्वेष, मरण और व्याधिका देती है। किसी के मत से पुत्र, आयु और धन का नाश करती है। दक्षिणप्लवाभूमि निश्चय ही मृत्युको देती है। नैर्ऋत्यप्लवाभूमि घर का नाश करती है। पश्चिमप्लवाभूमि धनका नाश करती है। वायुकोणप्लवाभूमि उद्वेगका करनेवाली होती है। ईशानकोणप्लवाभूमि शीघ्र ही लक्ष्मीको देनेवाली होती है। पूर्वप्लवाभूमि कार्योंको सिद्ध करती है। उत्तरप्लवाभूमि वरदायिनी होती है। पूर्वोत्तरप्लवा भूमि सब कार्यों की सिद्धि करनेवाली होती है।

परकीयादि भूमिमें मण्डपका विचार—

मण्डप बनाने के लिए अपनी भूमि ही अति उत्तम होती है। परकीय भूमि में स्वामी की आज्ञा बिना मण्डप बनाकर जो कार्य किया जाता है-वह निष्फल हो जाता है। अपने निजी घरमें मण्डप और कुण्ड बना सकते हैं। नदीतीरादि में मण्डप और कुण्ड बनाने में परकीयत्व

विशेष—दानमयूखमतसे आठ यव का एक अंगुल उत्तम कहा है।
मध्य-सात यव और अधम ६ यवका एक अंगुल होता है।
कुण्डार्कादौ—सूत्रस्याधौ विलीयन्ते यूकालिक्षादयस्तथा।
मरीचिकायाम्—यवादून प्रमाणं तु मण्डपादौ न चिन्तयेत्।

दोष नहीं होता है। जहाँ मण्डप बनाना उचित समझते हों—उस भूमिमें बारह अंगुल लम्बा एक गढ़ा खोदकर (प्रयोगसार)। घर में मण्डप बनावे तो घरकी पूर्वदिशा को ही मण्डपादिमें ग्रहण करे।

यज्ञीयस्थलका विचार—

भस्म निकलनेसे यजमानका नाश होता है। जहाँ यज्ञ हो वहाँ चूँटी आदिके निकलने से उस गाँवका नाश होता है। गिली मिट्टी बालू आदि निकलने से राष्ट्रका नाश होता है। केशके निकलने से स्त्री की मृत्यु होती है। तुषके निकलने से पुत्रकी मृत्यु होती है। कपाल के निकलने से ऋत्विक् को भय होता है। ईटोंके टुकड़े निकलने से बन्धु बान्धवों से वियोग होता है। तृणके निकलने से कर्म का क्षय होता है। आर्द्रसिकता निकलनेसे विद्याभय होता है।

दिक्साधन विचार अत्यावश्यक—

दिक्साधन बिना कुण्डों को बनाने से मृत्यु होती है। कुण्डदर्पण। दिशाओंकी जानकारी में मूर्ख हो तो कुलका नाश होता है—यहवृद्धनारदका मत है। दिशाके अज्ञानमें धन का नाश होता है, (कुरुते दिङ्मूढमर्थक्षयम्) कुण्डप्रदीप दिशाओंकी भ्रान्ति-भ्रांतिमान होता है—विधानमाला। पर्वतपर, नदी के किनारे पर विशेषकर घर आदि में तथा रुद्रायतन भूमि में दिक् साधन नहीं होता है।

मण्डपारम्भ में विचार—

तीन तरह के अधम, मध्यम और उत्तम मण्डपमें ऋत्विक्, सदस्य तथा समाज के लोग सौकर्यतासे बैठ जांय ऐसा मण्डप बनावे-विद्यार्णव.

विशेष—'प्रारम्भात्पूर्वतः कुर्यात्खननं कर्मसिद्धये।
जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा ॥
पुनः संपूरयेत् खातं तत्र कर्म समारभेत्।
गृहे कुण्डे हस्तमितं खात्वा श्वभ्रं प्रपूनितम् ॥
(कुण्डमरीचिकायाम्)

तन्त्र। मण्डपके निर्माण के समय में 'धूम' आदि निकलनेकी व्यवस्था-का विचार अवश्य करे—कुण्डनारदपञ्चरात्र। पवित्र—शुद्ध और चौकोर भूमिमें मण्डप बनाना चाहिये।

कुण्डों में नाभि विचार—

नाभि के न रहने से बन्धुओं की मृत्यु होती है। नाभि के नाप को कमी और अधिकता होनेपर स्वयं यजमान का नाश होता है। नाभि-हीने स्थाननाश—विधानमाला मत से नाभि के न रहने से स्थान का नाश होता है। नाभि कुण्ड के उदर में रहती है। नाभि अष्टदला कार या कुण्ड के अनुरूप होती है।

मेखला विचार—

मेखलाओं के छिन्न-भिन्न होने पर यजमान का मरण होता है। 'मरणं' हीनमेखले'। 'विधानमाला'। मेखला के अधिक या न्यूनाधिक में व्याधि उत्पन्न होती है और धन का नाश होता है। मेखला कुण्ड के आकार की बनानी चाहिये। 'मेरुतन्त्रमत से' मेखलाके जर्जर तथा शृङ्गार हीनता पर यजमान का नाश करती है—

श्रृंगार रहितं यच्च कुण्डं जर्जरमेखलम्।
यजमानविनाशाय प्रोद्घातः स्फुटिते भवेत्॥
हारीतः—मरणं यजमानस्य जायते छिन्न-मेखले।
शोकस्तु मेखलोच्छ्राये मानाधिकतरो भवेत्॥

एक, दो, तीन, नौ, सात और दस मेखला का हवन कुण्ड में विधान है। शक्तिसंगमतन्त्र। दो, चार, तीन और एक मेखला का विधान है। ईश्वर संहिता और बृहद्ब्रह्मसंहिता। एकमेखला का विधान संक्षेप हवन कर्म में है। जयाख्यसंहिता। तीन मेखला का विधान है। बड़े हवन में हैं। बृहन्नालतन्त्र। दो मेखला शूद्रों के लिए और एक मेखला संकर जातियों के लिये है। मेरुतन्त्र। पाँच मेखला पक्ष

में मनोनुकूल रंग लगावे। एक मेखला पक्ष में-मेखला के नीचे छिद्र होता है। दो मेखला पक्ष में—दूसरी मेखला में छिद्र होती है। तीन-मेखला पक्षमें मध्य मेखला में छिद्र होता है और पांच मेखला में चौथी मेखला में चौथी मेखला में छिद्र होता है। ('कोटिहोमपद्धति')

कुण्ड-विचार—

कुण्ड में कण्ठ और ओठ न रहनेसे पुत्रों का नाश होता है—यह एक मत है। कुण्ड में कण्ठ न रखने में किसी की भी मृत्यु होती है। यह भी एक होम है। कुण्ड में कण्ठ न रहनेसे स्त्रीका नाश होता है—यह भी एक मत है। कुण्ड में कंठ न रखने से किसी की भी मृत्यु होती है। यह भी एक मत है। कंठाधिक्ये भवेनाशः—इस हारीत वचन से कण्ठाधिक्य में भी नाश होता है।

बहिरेकांगलो कंठो द्व्यङ्गुलः कश्चिदागमः।
तेनाद्यः प्रथम पक्ष एवं श्रेयान् बहुसंमतत्वात्।
'सांप्रदायिकास्तु प्रथम पक्षमेव अन्यन्ते बहुतन्त्रसंमतत्वात्'
[शारदातिलके]

भोक्तुभुक्तः कंठतोऽधः सुखाय चोर्ध्वं तस्मात्सैव दुखं प्रयच्छेत्।
होम्यं तद्वत्कंठतोऽधः सुखाय तस्मादूर्ध्वं दुःखदं स्यात्प्रवन्हे।

कंठके नीचे तक कुण्डमें शाकल्य की आहुती सुख देनेवाली है और कंठ के ऊपर जो आहुतियां कुण्ड में पड़ती है। वह दुःख को देनेवाली होती हैं।

मण्डपाच्छादन विचार—

जनताकी सुविधाके लिए बांस आदि द्वारा निर्मित जाली से दरवाजों को छोड़कर मण्डप को ढकना चाहिये[१]। कुत्ते, बिल्ली, मूसा, गौ,

---

विशेष—देखिये-ज्ञानवर्ण, मेरुतन्त्र, नित्यषोडशिकार्णव, शौनकपरिशिष्ट, कोटि-होम, जयाख्यसंहिता, राजधर्मकौस्तुभ, वृहद्ब्रह्मसंहिता।

बकरी, बैल, पागल, शत्रु, भयंकर रोगी, विषदेनेवाला, अग्नि लगाने वाला, लड़ाई करनेवाला, नास्तिक दंभी, वेश्यागामी आदि का मण्डप में प्रवेश न हो—ऐसा मण्डपाच्छादन करे। मण्डप की हर समय रक्षा होनी चाहिये। रात को आदमी मण्डप के चारों तरफ घूमता रहे जिससे चोर आदि द्वारा मण्डप की सामग्री तथा मूर्ति की चोरी का भय न हो।

आचार्य कुण्ड निर्णय—

नवग्रहके नौ कुण्ड पक्ष में सूर्य के प्रधान हो जाने से आचार्यकुण्ड मध्य का ही होता है। इन कुण्डों की योनिका स्थान विभक्त। द्विमुखमें मध्य गत दो कुण्डों में दक्षिणवाला कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। इनकी योनि पूर्व होती है। शतमुख में विशेष वचन से नैऋत्यकोण का ही कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। इन कुण्डोंकी योनि पूर्व ही होती है। दशमुखमें नैऋत्यकोण का ही कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। इनकी योनि पूर्वमें होती है। विष्णु, रुद्र आदिकी प्रतिष्ठा मात्रमें नौ कण्डी पक्षमें ईशानकोण और पूर्वादिशाके मध्य वाला कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। पञ्चकुण्डी पक्षमें तो ईशानकोण का ही आचार्य कुण्ड होता है। रामबाजपेयी ने पञ्चकुण्डी पक्ष में भी ईशान और पूर्वदिशा का कुण्ड आचार्यकुण्ड माना है, पर उसमें कोई मूल नहीं मिलता है। ये कुण्ड–चतुरस्र योनि, अर्धचंद्र, त्रिकोण, वृत आदि भेदसे ही बनते हैं या सब वृत चतुरस्र, या पद्म बन सकते हैं। यदि सब एक प्रकार के बने तो भी 'कुण्डत्रयी दक्षिण योनिः' यह वचन वहाँ भी लगेगा। ऐसा मालूम होता है। प्रतिष्ठा में जहाँ एक कुण्ड का विधान वहाँ ईशान, पूर्व, पश्चिम, उत्तर आदि का कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। प्रतिष्ठा में यदि चारकुण्ड पक्ष को स्वीकार करेंगे तो संभवतः पूर्वदिशा का कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है। प्रतिष्ठा में सातकुण्ड पक्षको ग्रहण करने पर अचार्यकुण्ड पूर्वदिशाका ही निर्विवाद होगा।

त्रयोदशात्र कुण्डानि परितः कारयेद् बुधः। उक्तलक्षणयुक्तानि प्रधानं

त्वग्निकोण के अत्र मण्डपे वेद्या परितः दिक्षुद्वे विदिक्षु चैकैकम् प्रधानं च त्रयोदश कुण्डानि। आदौ पूर्वादि चतुर्दिक्षु एकैकंकुण्डम्कोण चैकं प्रधानकुण्डम् पञ्चकुण्डेभ्यो बहिः परितः-अष्टादक्षु एकैकंकुण्डम् एवं त्रयोदश कुंडानि ननु—अग्निकोणे एकस्य कुंडस्य विद्यमानत्वात् कथमत्र प्रधानकुंडकार्यमाह--अग्निकोणगात् कुंडात् हस्तमात्रमनरतः व्यवस्थाने अग्निकोण एव साक्षात् मुख्यं प्रधानकुंड कारयेत्। [तंत्रसार]

जहां हवन प्रधान होगा वहां पंचकुंडी और पंचकुंडीपक्ष में मध्यका ही कुंड आचार्य शास्त्रीय मतसे होता है। क्योंकि मत्स्यपुराण, शारदा तिलक आदि 'आचार्यकुंड मध्ये स्यात् गौरीपतिमहेन्द्रयोः' इत्यादि पद्य दीक्षा और प्रतिष्ठा आदि को लेकर ही लिखा है। यह बात वहांके प्रकरण को देखने से निर्णीत हो जाती है।

कुण्ड विषयक विचार—

कुण्ड को परिमाण से हीन बनाने पर व्याधि होती है। कुण्ड की नाप से अधिक बनानेपर शत्रु बढ़ते हैं। कुण्ड निर्माण करनेपर पत्थर निकले तो अपमृत्यु होती है। 'विधानमालामत' से अनेक प्रकार का भय, धन तथा आयुकी हानि होती है। कुण्ड बनानेपर हड्डी, केश और अँगार निकले तो धन का नाश होता है। अंगारों के टुकड़े निकलने पर रोग तथा पाषाण के टुकड़ों को देखनेपर सौख्य होता है। 'विधानमाला'। शव निकले तो कुल का नाश होता है। कुण्ड के बनाते समय राख निकले तो भय उत्पन्न होता है। कुण्ड के निर्माण समय में तुष निकले तो दरिद्री होता है। कुण्ड में नाप से अधिक खात होने पर धननाश होता है। कुण्ड के टेढ़ापन होने से दुःख होता है। कुण्डके न्यून या अधिक होने से यजमान का स्वयं नाश होता है। कुण्डादिक के अधिक या न्यून होने पर यज्ञाचार्य का मरण होता है। कुण्ड के नापमें कमी रखने पर दरिद्रता होती है। विशेषज्ञों द्वारा कुण्ड न बनाने पर कुण्ड और मण्डपादि निष्फल होता है। कुण्ड आयु, कलत्र पुत्र और सुख देनेवाला कहा गया है, कुण्ड को खोदते समय सर्प, वृश्चिक देखने में रोग, मृत्यु तथा भय प्राप्त होता

है। 'विधानमाला'। अंगार में स्वामी का नाश, खर्पर में स्त्री और धनक्षय, भस्ममें-सन्ततिविच्छेद, सिकताओं में धनक्षय, गजास्थि में स्वामी का मरण, तुरगास्थि में धन मनुष्यों का नाश और पश्वास्थि में पशुओं का मरण होता है। कुण्ड के विस्तार रहित में यजमान का जीवन अल्प समय का हो जाता है। कुण्ड के टेढ़ेपन में और मानहीन में जठराग्नि मन्द हो जाती है। कुण्ड के आधिक्य में सन्ताप होता है। कुण्ड के बिना हवन करने से ऋत्विजों द्वारा मन्त्रों की सिद्धि देनेवाला नहीं होता है। अतः सौत्र या जंगम स्थिर कुण्ड करे। 'जयाख्यसंहिता'। जिस ग्रन्थ से चतुरस्र कुण्ड बनावे उसी ग्रन्थ से अन्य पद्म आदि कुण्ड बनावें, ऐसा कोई नियम या विधान नहीं मिलता है।

चतुरस्रादि कुण्डसे कामनापरक फल—

चतुरस्रकुण्ड-शान्ति, विजय, लक्ष्मी, सिद्धि और सम्पूर्ण कार्यों को करनेवाला है। मुमुक्षार्थी वैष्णवों के लिए चतुरस्र कुण्ड का विधान है जो विष्णुयागादियज्ञोंमें आचार्य कुण्ड मंडप के मध्य मे प्रधान वेदी तथा दिशाओंमें कुण्डोंको बनाकर यज्ञकराते हैं। उनका यह मध्य में मत अशास्त्रीय ही प्रतीत होता है। गृहवास्तु और प्रसादवास्तु में वास्तुवेदी ईशानकोण में होती है, उसके दक्षिण ग्रहवेदी होती है। महारुद्रादि यज्ञोंमे प्रधानवेदी ईशानकोण में उसके दक्षिण ग्रहवेदी होती है। विष्णुयागादि में प्रधानवेदी दक्षिणदिशामें होती है। साधारण मत से पूर्वमें भी प्राप्त होती है। विष्णु आदि प्रतिष्ठामें प्रधानवेदी मध्यम बनती है। शतमुख, द्विमुख, और एकमुख में प्रधानवेदी पूर्वदिशामे बनती है। कोटिहोमात्मक विष्णुयागमें ईशानकोण में ग्रहवेदी उसके दक्षिण प्रधानवेदी होती है।

विविध प्रकार के कुण्डों का निर्माण—

चतुरस्र कुण्ड बनाने का प्रकार—

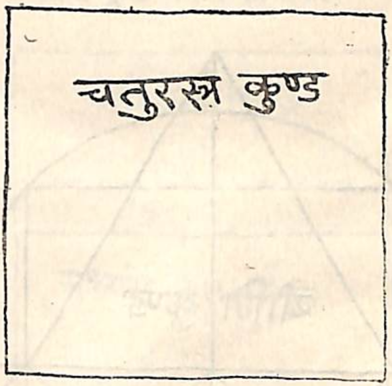

द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूत्रं शङ्कौ पश्चिमे पूर्वगेऽपि ।
दत्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतुर्ये स्यादेवं वा वेदकोणं समानम् ॥

चौबीस अङ्गुल का गज लेकर चारों तरफ (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर) एक सा नाप द्वारा नापने से मय लेपन द्वारा चतुरस्र कुण्ड एक हाथ का तैय्यार होता है ।

योनिकुण्ड बनाने का प्रकार—

क्षेत्रे जिनांशे पुरतः शरांशान् सम्बर्ध्य च स्वीयरदांशमुक्तान् ।
कर्णाङ्घ्रिमानेन लिखेन्दुखण्डे प्रत्यक् पुरोऽङ्काद्गुणतो भगाभम्॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र में दक्षिणोत्तर आधे पर एक लम्बी रेखा दे । तदनन्तर पश्चिम भाग के आधे भाग का दो

हिस्सा पूर्व और पश्चिम की तरफ करे। फिर उसके आधे में अर्थात् कोने से एक रेखा दे जो टेढ़ी दूसरी कोने में जाकर मिले। इस तरह फिर दूसरे कोने से रेखा दे। इसी तरह दूसरे कोने में दे। इस प्रकार दोनों आधों में चार रेखा टेढ़ी होगी। फिर उस पूर्व निर्मित चतुरस्र के ठीक पूर्व दिशा की तरफ के मध्य से पाँच अङ्गुल, एक यव और दो यूका

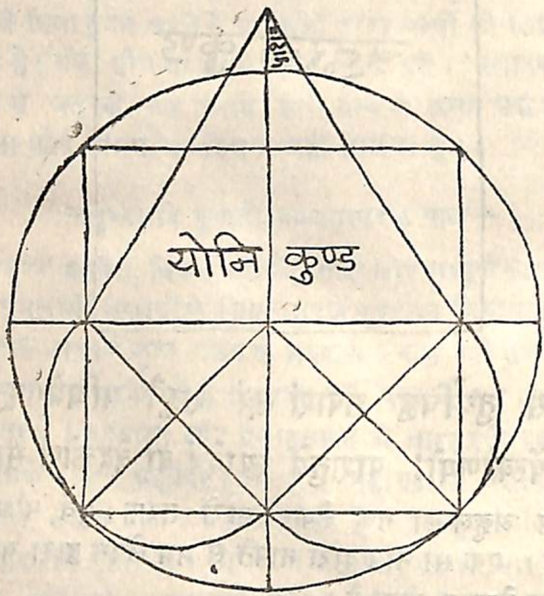

बढ़ा दें। फिर चतुरस्र के किये हुए ठीक मध्य से अर्थात् दक्षिण दिशा से सटी एक रेखा टेढ़ी दे जो पूर्व के ठीक मध्य में बढ़ी हुई पाँच अङ्गुल एक यव और यूका वाली रेखा के ऊपरी हिस्से में मिल जाय। इसी तरह उत्तर दिशा से एक रेखा दे। अर्थात्—दक्षिणोत्तर रेखा बढ़े हुए पाँच अङ्गुल एकयव और दो यूका की रेखा में मिला दे। तदनन्तर नीचे प्रकाल को दक्षिण की तरफ और उत्तर की तरफ बने हुए दोनों हिस्सों के

ठीक मध्य से अर्थात्—अलग अलग घुमाकर पश्चिम भाग के ठीक मध्य की तरफ मिला दे। इसी तरह उत्तर की तरफ से प्रकाल द्वारा रेखा पश्चिम दिशा के ठीक मध्य में मिलाने से योनि कुण्ड तैय्यार हो जाता है।

अर्धचन्द्र कुण्ड बनाने का प्रकार—

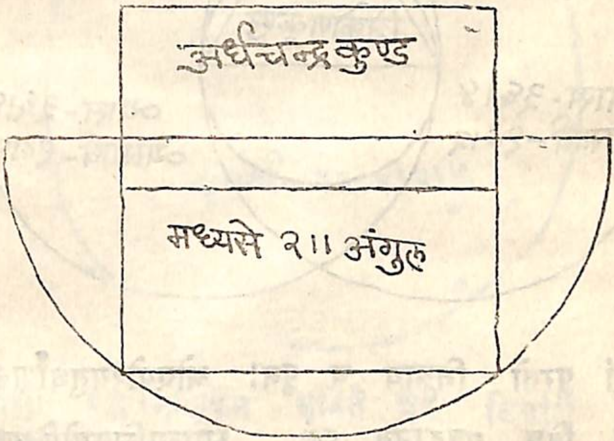

स्वशतांयुतेषु भागहीनस्वधरित्रीमितकर्कटेन मध्यात्।
कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां विदधात्विन्दुदलस्य साधुसिद्ध्यै॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के पूर्व दिशा से अढ़ाई अङ्गुल हटाकर (पञ्चकुण्डी पक्ष में उत्तर दिशा के ठीक मध्य की तरफ से अढ़ाई अङ्गुल हटाकर) दक्षिणोत्तर एक रेखा लम्बी दे। उसी रेखा के मध्य से उन्नीस अङ्गुल' एक यव, एक यूका, पांच लिक्षा और सात बालाग्र (१९ अङ्गुल, १ यव, १ यूका, ५ लिक्षा, ७ बालाग्र) प्रकाल से नाप कर अर्थात् साढ़े उन्नीस अङ्गुल को प्रकाल से नाप कर टेढ़ी रेखा देने से अर्धचन्द्र कुण्ड बनता है।

त्रिकोण कुण्ड बनाने का प्रकार—

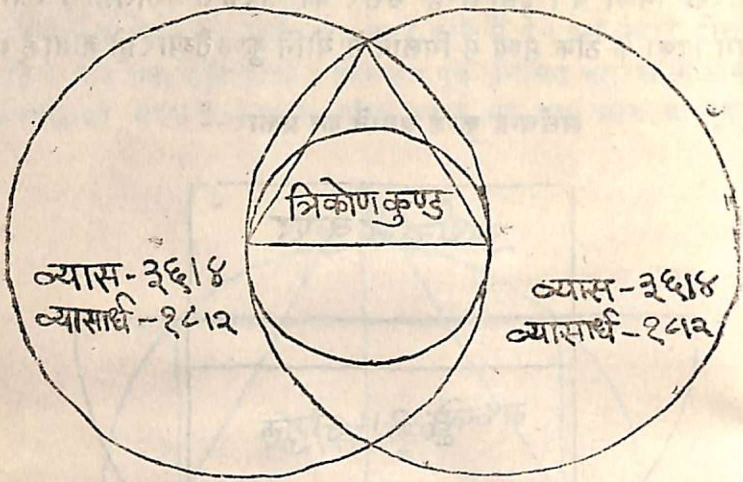

वह्न्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोण्योश्चतुर्थांशकम् ।
चिह्नेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्र्यस्त्रिकष्टोज्झितम् ॥

चौबीस अङ्गुल के चतुरस्र के बाहर पश्चिम की तरफ से वायव्यकोण और नैर्ऋत्यकोण की तरफ छः छः अङ्गुल और बढ़ा दे। अर्थात् छः अङ्गुल वायव्यकोण में और छः अङ्गुल नैर्ऋत्यकोण में बढ़ा दें। तदनन्तर निर्मित उस चतुरस्र के ठीक पूर्वदिशा के मध्य से आठ अङ्गुल लम्बी रेखा सीधी पूर्वदिशा की तरफ बढ़ा दे। फिर वायव्यकोण में बढ़ी हुई रेखा के अन्तिम हिस्से से एक रेखा टेढ़ी दे, जो पूर्वदिशा में बढ़ी हुई रेखा में मिले। उसीप्रकार नैर्ऋत्यकोण से रेखा देने से त्रिकोण कुण्ड तैय्यार होता है।

वृत्तकुण्ड बनाने का प्रकार

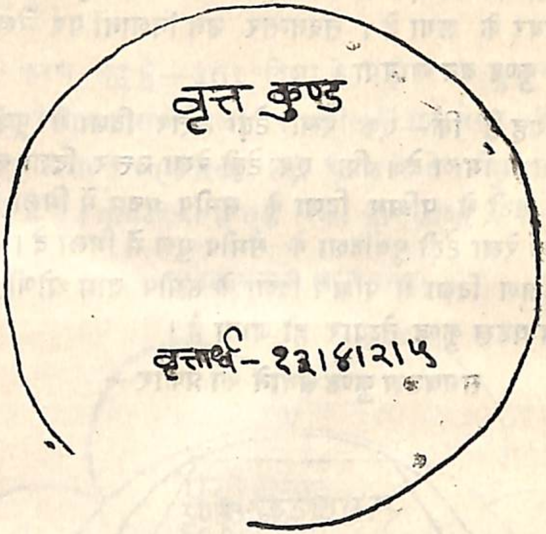

विश्वांशैः स्वजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते ।
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्याद् वृत्तसंज्ञं शुभम् ॥

चौबीस अङ्गुल के चतुरस्र के ठीक मध्य से साढ़े तेरह अंगुल (तेरह अङ्गुल, चार यव, दो यूका, पाँच लिक्षा और तीन बालाग्र) का प्रकाल लेकर गोलाकार घुमाने से वृत्तकुण्ड का निर्माण हो जाता है ।

विषम षडस्रकुण्ड बनाने का सरल प्रकार—

भक्तेक्षेत्र जिनांशैर्धृतिमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तै,
व्यासाद्धर्धान्मण्डले तन्मितघृतगुणकं कर्कटे चेन्दुदिक्कः ।
षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमोकन्तु हित्वा नाशे
सन्ध्यषु दोषामपि च वृतिकृतनेत्ररम्यं षडस्रम् ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ऊपर अठारह अंगुल और दो यव का एक गोलाकर वृत्त बनाकर उस वृत्त में छः निशान बराबर-बराबर के लगा दे। तदनन्तर उन निशानों पर रेखा देने से विषम षडस्र कुण्ड बन जायगा।

तात्पर्य यह है कि—एक रेखा टेढ़ी उत्तर दिशा से पूर्वदिशा के समीप दक्षांस में मिला दे। फिर एक टेढ़ी रेखा उत्तर दिशा की पहली रेखा समीप सटी से पश्चिम दिशा के समीप पुच्छ में मिला दे। फिर दक्षिण से एक रेखा टेढ़ी पूर्वदिशा के समीप मुख में मिला दे। फिर एक रेखा टेढ़ी दक्षिण दिशा से पश्चिम दिशा के समीप वाम श्रोणी में मिला देने से विषम षडस्र कुण्ड तैय्यार हो जाता है।

समषडस्र कुण्ड बनाने का प्रकार—

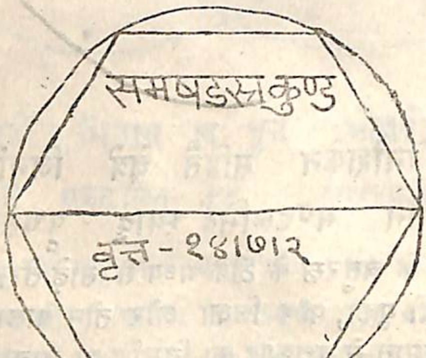

अथवा जिनभक्तकुण्डमानत्तिथिभागैः स्वखभूपभागहीनैः।
सितकर्कटोद्भवे तु वृते विधुदिक्तः समषड्भुजैः षडस्त्रम् ॥

चौबीस अंगुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ऊपर चौदह अङ्गुल, सात यव और यूका का एक गोलाकार वृत्त बना दे। तदनन्तर

उस वृत्त में बराबर बराबर के छः चिह्न कर देने से समषडस्रकुण्ड बन जाता है।

स्पष्टी करण यह है—उत्तर दिशा से टेढ़ी रेखा मुख पर मिला दे मुख से एक रेखा दक्षांस में मिला दे। दक्षांस से एक रेखा दक्षिण दिशा में दे। दक्षिण दिशा से एक रेखा टेढ़ी पुच्छ में दे। पुच्छ से एक रेखा वामश्रोणी में दे। वामश्रोणी से एक रेखा और दिशा में मिला दे।

पद्मकुण्ड बनाने का प्रकार--

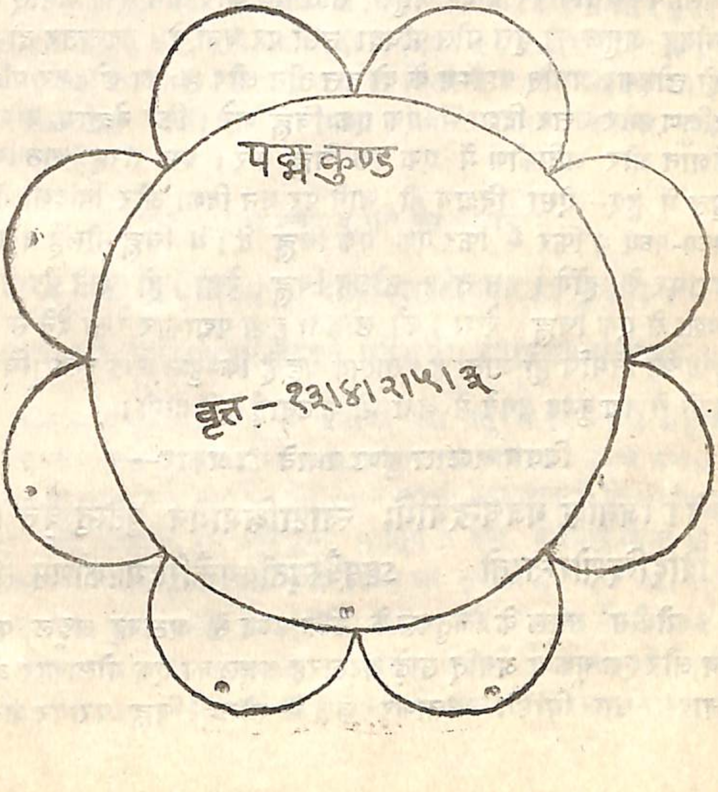

अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके यत्रादिमं कर्णिका युग्मे-
षोडशकेशराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागोनिते।
भक्ते षोडशधा शरान्तरधृते स्युः कर्कटेऽष्टौ छदाः,
सर्वास्तान्खनकर्णिकां त्यज निजायामोच्चकां स्यात्कजम्॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र के ठीक मध्य से एक गोलाकर प्रकाल द्वारा तीन अङ्गुल का वृत्त बनावे। तदनन्तर छः अङ्गुल का गोलाकार दूसरा वृत्त उसी के ऊपर बनावे। फिर नव अङ्गुल का वृत्त गोलाकार तीसरा और बारह अङ्गुल का गोलाकार वृत्त चतुर्थ उसी पर बनाने पर चौदह अङ्गुल, सात यव और तीन यूका अर्थात् साढ़े चौदह अङ्गुल का वृत्त गोल पाँचवा उसी पर बना दे। तदनन्तर दो वृत्त को छोड़कर अर्थात् प्रारम्भ के दो वृत्त तीन और छः का छोड़कर पश्चिम दक्षिण और उत्तर दिशा में एक एक चिह्न करे। फिर नैऋत्य, वायव्य, ईशान और अग्निकोण में एक एक चिह्न करे। इस तरह आठ चिह्न वृत्त में हुए—ऐसा निश्चय हो जाने पर उन दिशा और विदिशाओं के मध्य-मध्य में फिर में फिर एक एक चिह्न दे। ये चिह्न सोलह बराबर बराबर के होंगे। इस तरह सोलह चिह्न (रेखा) हो जाने पर उत्तर दिशा से एक चिह्न (रेखा) को छोड़ता हुआ पद्माकार रेखा देने से पद्म कुण्ड का निर्माण हो जाता है। तात्पर्य यह है कि–कुल आठ रेखा (चिह्न) छूटने से पद्म कुण्ड बनने में जरा भी कठिनाई नहीं होगी।

विषम अष्टास्र कुण्ड बनाने का प्रकार—

क्षेत्रे जिनांशे गजचन्द्रभागैः स्वाष्टाक्षिभागेन युतैस्तु वृत्ते।
विदिग्दिशोरन्तरतोऽष्टसूत्रैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम्॥

चौबीस अङ्गुल के चतुरस्र के ठीक मध्य से अठारह अङ्गुल, पाँच यव और एक यूकवा अर्थात् साढ़े अट्ठारह अङ्गुल का एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस निमित गोलाकर वृत्त में सोलह चिह्न बराबर करे।

तदनन्तर दिशा और विदिशा के मध्य की रेखा से (अर्थात् दिशाओं की और विदिशाओं की रेखाओं को छोड़कर) बनाने से विषम अष्टास्र कुण्ड बन जाता है।

तात्पर्य यह है कि—पूर्वदिशा के समीप दक्षांस अंश से एक रेखा सीधी पश्चिम की तरफ पुच्छ अंश में मिला दे। फिर पूर्वदिशा और ईशान के मध्य अर्थात् पूर्वदिशा के समीप मुख अंश से एक रेखा पश्चिम दिशा के समीप वामश्रोणी में मिला दे। उत्तर के वामांस अंश से एक रेखा सीधी दक्षिण दिशा के दक्षपार्श्व में मिला दे। फिर वामपार्श्व से एक रेखा सीधी दक्षिण दिशा के समीप दक्षश्रोणी में मिला दे। पूर्वस्थित दक्षांस से एक टेढ़ी रेखा वामपार्श्व में मिला दे। फिर ईशान और पूर्वके मध्य मुख से एक रेखा टेढ़ी दक्षश्रोणी में मिला दे। पश्चिम दिशा स्थित पुच्छ से एक रेखा टेढ़ी वामांस अंश में मिला दे। और वामश्रोणी से एक रेखा टेढ़ी दक्ष पार्श्व में मिला देने से विषम अष्टास्र कुण्ड बन जाता है।

सम अष्टास्र कुण्ड बनाने का प्रकार—

मध्ये गुणे वेदयमैर्विभक्ते शक्रैर्निजर्यब्धिलवेन युक्तैः।
वृत्ते कृते दिग्विदिशान्तराले गजैर्भुजैः स्यादथवाष्टकोणम् ॥

चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनाकर उस चतुरस्र पर चौदह अङ्गुल, दो यव और तीन यूका का गोलाकार एक वृत्त बनाकर उसमें बराबर बराबर के आठ चिह्न कर दें। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि–ये चिह्न दिशा और विदिशा में नहीं होने चाहिये। यदि ये चिह्न दिशा और विदिशा में पड़े तो कुण्ड निर्माण में विघ्न आ सकता है। एक रेखा टेढ़ी (क) उसका प्रकार यह है—मुख से प्रारम्भ कर वामांस में मिलावे। (ख) वामांस से सीधी रेखा प्रारम्भ कर वामपार्श्व में मिला दे। (ग) वामपार्श्व से एक टेढ़ी रेखा प्रारम्भ कर वामश्रोणी में मिला दे। (घ

वाम श्रोणी से एक सीधी रेखा पुच्छ में मिला दे। (ङ) पुच्छ से एक टेढ़ी रेखा दक्षश्रोणी में मिला दे। (च) दक्षश्रोणी से एक सीधी रेखा दक्ष पार्श्व में मिला दे। (छ) दक्ष पार्श्व से एक टेढ़ी रेखा दक्षांस में मिला दे (ज) दक्षांस से एक सीधी रेखा सीधो मुख में मिला दे। इस तरह आठ चिह्न वाला सम अष्टास्र कुण्ड तैय्यार हो जायगा।

नव कुण्डों पर कोटिहोमपद्धति का मत

ननु एतानि शारदातिलके वेदमुक्त्वा प्रागादिदिक्षु दीक्षाङ्गत्वेनोक्तानि।

अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात्।
चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्तुलम्।
षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामसः॥ इति।

तत् एतेषामेय सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्रमित्यादिना क्रमेण फलानि श्रुतानि। तेनाङ्गभूतानामेव तेषां कुण्डानामेकस्य तूभयत्वे संयोगपृथक्त्वमितिन्यायेन फलार्थत्वमपीत्येवं सति तत्र दीक्षाप्रकरणोक्तानामेषां काम्यानां कथमत्र प्राप्तिः। यदा हि विकृतावपि प्राकृतः काम्यो गुणो न गच्छतीतिन्यायस्तत्राविकृतिभूतेऽत्र सुतरामप्राप्तिः। किञ्च—वेदेरत्रासत्वात्प्रागादिदिक्षु—उक्तान्यत्र कथं प्राप्नुयुः। कथञ्चित्प्राप्तौ त्वष्टकुण्डी प्राप्नुयात्।

अत्र ब्रूमः

शारदायां मण्डपं वेदिं चोक्त्वा,
दीक्षाङ्गभूतानि कुण्डान्युक्तानि।
तदेतत्सर्वसाधारणं न
तु दीक्षामात्रविषयम्।

तदग्रे—अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि' इति दीक्षोपक्रमेण। प्राक् तत् प्रकरणाभावात्। होमादेश्चानुपस्थितत्वात्। एवं सति क्रियाविशेषानुपस्थितौ किमाश्रितानां कुण्डानां तत्तत्फलसाधनता बोध्येत। वाक्येनैव दीक्षाद्याश्रयदाने वाक्यभेदापत्तिः प्रकृतकुण्डामात्रमुपस्थितत्वात्तदाश्रितानां चतुरस्रत्वादीनां फलसम्बन्धे उच्यमानेऽपि कुण्डानामव्यापररूपाणामाश्रयत्वायोग्यत्वात्तद्योग्यायाश्च क्रियाया अनुपस्थितत्वात्मागुक्तदोषानतिवृत्तिः। दीक्षादीनामत्रानुपस्थितौ कथमत्रत्य कुण्डमण्डपसम्बन्ध इति चेत्। तत्तत्प्रकरणस्थवाक्यैरिति ब्रूमः। दीक्षातुलापुरुषदिप्रकरणे हि मण्डपाष्टकुण्ड्याद्यङ्गत्वेन श्रुतम्। तत्प्रकारस्त्वयमनारभ्याधीतः सर्वसाधारणः पलाशत्वमिवेष्ट्याग्निहोत्रादिप्रकृतिविकृतिभावानापन्नहोमसाधनीभूतजुह्वाम्। एतेनात्राप्यष्टकुण्डीप्राप्नुयादिप्यपास्तम्। तदङ्गबोधकप्राकरणिकवाक्याभावात्।

न च दीक्षाया एव तत्र वक्ष्यमाणत्वात्तन्मात्रविषयत्वमस्य न तु साधारणमितिवाच्यम्। साधारणस्यैव स्वयं वक्ष्यमाणदीक्षार्थत्वेनात्र संग्रहमात्रात्तन्मात्रविषयत्वे मानाभावात्। अत एव हेमाद्र्यादिभिरेतान्येव वाक्यानि तुलापुरुषाद्यङ्गाष्टकुण्डीप्रदर्शनार्थमुदाहृतानि। तस्मात्प्रकरणाभावादाश्रयाभावेन गुणफलसम्बन्धासंभवात्। तुलापुरुषादावष्टकुण्ड्या अङ्गत्वमेव न तूभयार्थत्वम्। तेन सर्वसिद्धिकरं कुण्डमित्यादि सर्वकर्मसाधारण्येनैव व्याख्येयम्। सर्वसिद्धिकरं कर्मणि चतुरस्रं कुंडमिति।

अत एवाग्रे स्पष्टमुक्त वर्तुलं शान्तिकर्मणीतिविज्ञानललिते च। अभिचारोपशान्त्यर्थे होमे इति। कामिके च शान्तिके पौष्टिके इति। सर्वसिद्धिकरं कुण्डमित्यादिसामानाधिकरण्यं च प्रधानद्वारोपपादनीयम्। यथा यो वृष्टिकाम इत्यादि वृष्ट्याद्यर्थंसौभरे एव हीषिति वृष्टिकामाय निधनं कुर्यादित्यादिना वृष्टिकामाय यत्सौभरं तत्र हीषिति विशेषविधिर्भवति। एवमिहापि।

विशिष्टोद्देशेऽपि न वाक्यभेदः। उद्देश्यापर्यवसानात् अन्यथा यत्र क्वापि चतुरस्रादिविकल्प प्रसंगादित्यादिविस्तरभयान्नेहोच्यते। तस्मादेतैर्वाक्यैः साधारण्येन तत्तत्फलविशेषार्थंहोमादौ कुण्डविशेषविधीयन्तेइत्ययुतहोमादौ शान्तिकत्वादिरूपेणानुष्ठीयमानेऽस्त्येषां कुण्डानां प्राप्तिरितिसिद्धम्।

तत्र त्वेतावान् विशेषः। तुलापुरुषादेरपि शान्त्याद्यर्थत्वेन तत्र प्राप्नुवन्त्येतानि कुण्डानि दिग्विशेषेष्वेव भवन्ति। ऐन्द्रयां स्तंभे चतुःकोणमित्यादिकामिकादिवाक्यैस्तंभाद्यर्थंकर्मसु प्राप्तचतुःकोणादिकुण्डेषु वेदितः पूर्वादिनियमात्प्राप्नुवन्ति।

अयुतहोमादौ तु मण्डपमध्यभाग एव भवन्ति। तस्यैव कुण्डदेशत्वसाधनादित्यलम्।

तुलापुरुषास्नातस्यापि मण्डपस्थप्राप्तिरत्रोपपादिता। तत्र तुलारोहणादेः प्रधानवेद्यां कर्तव्यत्वेन वेदेः प्रधानदेशत्वात्तस्याश्च मध्यकार्यत्वोक्त्या मण्डपमध्यदेशस्य प्रधानदेशत्वं गम्यते। एवं चात्र तस्मिन् मण्डपे प्राप्ते मध्देशस्य प्रधानदेशत्वमवगतं न त्यक्तुं न्याय्यम्। अत्र च प्रधानहोमोऽयुतहोमादिसमाख्यावशात्। तेनापि मण्डपमध्यभागे कुण्डम्।

किञ्च भविष्योत्तरे—अयुतलक्षहोमाधुक्त्वा कोटिहोमं वदन् मण्डपमध्यभागे कुण्डमाह—मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्यात् विचक्षणः। अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च॥

तत्र तत्र विशेषविधिबलादेव भविष्यतीति वाच्यम्। लक्षहोमादेव कुंडस्य प्राप्तत्वात्तत्तावन्न विधेयं येन विशिष्टविधिः स्यात्। एवं सति तदनुवादेन मध्यदेशविधानेऽष्टहस्तप्रमाणविधाने च वाक्यभेदः स्यात्। अतोऽस्मदुक्तमार्गेण मध्यदेशप्राप्तकुण्डानुवादेन तत्प्रमाणान्तरविधिर्लाघवात्। विकृतिगतानुवादेन च प्रकृतावनवगतविशेषसिद्धिर्न्याय्या। यथा सत्रेऽर्धित्वाद्यनुवादेनज्योतिष्टोमे दक्षिणावैषम्यसिद्धिः। तस्मादपि मण्डपमध्यभागे कुण्डम्।

वसिष्ठसंहितायां तु स्पष्टमुक्तम्—

मण्डपं प्रकृत्य कुण्डं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम् ।
वितस्तिद्वयखातं तत्कुण्डं स चतुरङ्गुलम् ॥ इति ॥

नव कुण्डों पर कुण्डकल्पलता का मत—

कुण्डकल्पतायाम्—अथ वक्ष्यमाणानि कुण्डानि तडोत्सर्गादौ अष्टचतुरस्रादिनानाप्रकाराण्यष्टौ तदसंभवे चतुरस्राणि वर्तुलानि वा कृत्वा नवममाचार्यकुण्डं वृत्तं चतुरस्रं वा पूर्वेशानयोर्मध्ये कुर्यात् । तदुक्तं शारदायाम्—

अष्टास्वाशासु कुण्डानि रम्याकाराण्यनुक्रमात् ।
चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्तुलम् ॥
षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामतः ।
आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयो ॥

आम्नायरहस्ये—

नवकुण्डविधानेन दिक्षु कुंडाष्टके स्थिते ।
नवमं कारयेत्कुण्ड पूर्वेशानदिगन्तरे ॥
कुंडानि चतुरस्राणि वृत्तनानाकृतानि च ।

सोमशंभूः—

शस्तानि तानि वृत्तानि चतुरस्राणि वा सदा ॥

अन्यत्रापि—

वेदास्राण्येव तानि स्युर्वर्तुलाण्यथवा क्वचित् ।

पञ्चकुण्डीपक्षे—

कुर्यात्कुंडानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः ।
पञ्चमं कारयेत्कुंडमीशदिग्गोचरे द्विज ॥

स्त्रीणां तु लिङ्गे विशेषः—स्त्रीणां कुंडानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्। तत्र च दर्शपौर्णमासयोः पञ्चदशसामिधेनीरनुब्रूयात् सप्तदश-वैश्यस्येति। वैश्यकर्तृक सामिधेनीसादृश्यवत्स्त्रीकर्तृकतुलाकुण्डानां योन्याकारेत्वनियमादाकारान्तरनिवृत्तिः।

यद्यपि लैङ्गे—नवकुण्डीप्रक्रमात् कुंडानीति बहुवचने यथा प्राप्तानुवादान्नवकुण्डीपक्षे एव योन्याकारत्वमितिप्रतिभाति। तथाप्युद्देश्यगत-संख्याया ग्रहेकत्ववदविवक्षितत्वान्मत्स्यपुराणोक्ते।

चतुःकुण्डीपक्षेऽपि—स्त्रीणां योन्याकारतैव भवति। तथा ब्रह्माण्डादौ तुलापुरुषविकारे एवमेवकुंडं तस्यापि स्त्रीकर्तृकत्वे योन्याकारेति।

नव पञ्चाथ वैकं वा कर्तव्यं लक्षणान्वितम्—नचात्र वाक्ये पक्षात्रयस्यापि समविकल्पिकत्वे नवपञ्चकुंडीपक्षयोरनुष्ठानापत्तेः। तस्मात्तत् फलस्य कर्मनिष्पत्तेः तेषां लोकवत्परिमाणतः फलविशेषः स्यान्नवपञ्चैक-कुण्डपक्षाणां फलतारतम्यमेव कल्प्यम्। तानि सर्वाणि दीक्षासु स्थापनादिषु कर्मसु। हस्तमात्राणि चतुरस्राणि कार्याणीत्यर्थः।

पुराणोक्ततुलादानादौ तु नवकुंडीपक्षः श्रेष्ठः, पञ्चकुंडीपक्षः मध्यमः, एककुंडीपक्षः कनिष्ठः। रुद्रानुष्ठानायुतहोमलक्षहोमेष्वेकमेव कुण्डमित्युक्तम्॥ इति॥

प्रतिष्ठादिमें—मण्डप सोलह हाथ या चौदह हाथ होगा। उसमें स्तंभ बाहर के बारह सात हाथ के होंगे और भीतर मण्डप के चार स्तंभ साढ़े आठ हाथ के होंगे। इन स्तभों का पंचमांश भूमि के भीतर में रहेगा। मध्यवेदी—एक हाथ ऊँची सवापाँच हाथ आठ अंगुल लम्बी-चौड़ा सोलह हाथ के मण्डप में होगी। चौदह हाथ के मण्डप में चार हाथ सोलह अंगुल की होगी। ऊँची एक हाथ होगी। वप्र नहीं होंगे। कुण्ड चौतीस अंगुल का होगा। उसका प्रकार यह है कि—चौतीस अंगुल का जो गज रहेगा उस चौतीस अंगुल के गज में चौतीस अंगुल का चौबीस अंगुल ही बनाना। उस हिसाब से दो अंगुल की नीचे की पहली मेखला, दूसरी तीन अंगुल की

मेखला और तीसरी ऊपर की मेखला चार अंगुल की होगी। इनकी लंबाई नव अंगुल की होगी। चौड़ाई प्रथम दो अंगुल चौड़ाई, और दो अंगुल लंबाई, दूसरी तीन अंगुल चौड़ाई तीन अंगुल लम्बाई और तीसरी चार अंगुल चौड़ाई और लम्बाई होगी। योनी उसी पूर्ववाले गज से बारह अंगुल लम्बी पश्चिम दिशा के ठीक मध्य से होगी। इसमें एक अंगुल कुण्ड के भीतर, एक अंगुल कण्ठ और दस अंगुल बाहर रहेगी। इनकी चौड़ाई आठ अंगुल होगी। ऊपर और पीछे की तरफ बारह अंगुल ऊँची और कुण्ड के भीतर ग्यारह अंगुल ऊँची होगी। मध्य मेखला में परिस्तरण छिद्र होगा। नाभी दो अंगुल चौड़ी चार अंगुल लम्बी होगी। ध्वजा--दो हाथ चौड़ी पाँच हाथ लम्बी वाहन के साथ होगी। पताका--सात हाथ लम्बी एक हाथ चौड़ी शस्त्र सहित होगी। इनमें गेरु आदि से शस्त्र --और वाहन बनेंगे।

शतमुख कुण्डका बनानेका प्रकार द्वैतनिर्णयसिद्धान्तसंग्रहमतसे--

शतमुख में अर्थात् सौ हाथ के समचतुरस्र मण्डप के तीन भाग पूर्व पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से करे। फी भाग (हिस्सा) तेतीस हाथ आठ अंगुल करे। इस तरह हो जानेपर मण्डप के मध्य नवमांश में दक्षिणोत्तर लम्बी तेतीस हाथ आठ अगुल की चार रेखा बराबर को दे। प्रत्येक रेखा में पाँच पाँच कुण्ड निर्मित होंगे। प्रत्येक कुंड का अन्तराल (मध्य) साढ़ेचार हाथ सात अंगुल होगा। अर्थात्--एक कुण्ड के बन जाने बाद दूसरा कुंड साढ़ेचार हाथ सात अंगुल जमीन छोड़कर बनेगा। इस तरह चार दक्षिणोत्तर लम्बी रेखा में सब बीस कुंड बनेंगे। उन रेखाओं का अन्तराल सात हाथ आठ अंगुल होगा। सारांश यह है कि--एक रेखा दक्षिणोत्तर लम्बी देने पर दूसरी रेखा देते समय सात हाथ आठ अंगुल जमीन छोड़कर रेखा दे। इस तरह तीन और चार रेखा में व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

अब बचे हुए अस्सी कुंडों का अवशिष्ट आठ नवमांशों में विभक्त करे।

उसका प्रकार यह है कि --प्रत्येक नवमांश में दो-दो कुंड बनेंगे। इस तरह आठ नवमांशों में कुल सोलह कुंड हुए। फिर उन्हीं आठ नवमांशों में क्रम से दिशा और विदिशा में आठ आठ कुंड बन जाने से सौ कुंडों का निर्माण सुगमतया से हो जायगा।

(क) कुछ लोग प्रधान वेदी ईशान देश में मानते हैं, पर बहुमत से पूर्वदिशा मे ही प्रधान वेदी करना ही उचित है।

(ख) इस मण्डप में स्तंभ मध्य के पचास हाथ के चार होंगे। द्वितीय श्रेणी में--तेतीस हाथ आठ अंगुल के होंगे। तृतीय श्रेणी में-पचीस हाथ के स्तंभ होंगे।

(ग) पूजन सोलह ही, स्तंभों का विशेष चिह्न से चिह्नित करना चाहिये, यही विधान है। बाकी का कोई विधान तथ्य शास्त्रों में न मिलता है न देखने में ही आया है।

(घ) सौ कुंड पचीस हाथ के मण्डप में न बनकर पचास हाथ के मण्डप में बन सकते हैं। लेकिन हजारों ब्राह्मण बैठकर इन कुण्डों में हवन नहीं कर सकते।

(च) कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः।
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे ॥

(छ) कुण्ड तन्त्रोक्तमार्गेण निर्मायाथ सलक्षणम्।
रक्तमुच्छालिपिष्टाभ्यां भूषयेद्दकप्रियं यथा ॥

(ज) विधानमालायाम्--

आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै कोटिहोम चरेन्नृप।
कोटिहोमात्परं नास्ति कर्मारिष्टविनाशने ॥
न तत्तुल्यं तया राज्ञा महोत्पातविनाशनम्।
कोटिहोमे यथाशक्तिर्लक्षे वाऽयुते तथा ॥
प्रतिवर्षं प्रकर्तव्यं हवनं पुष्टिपर्धनम्।

किसी के मत से दूसरा प्रकार—

मध्य नवमांश में दक्षिणोत्तर लम्बी क्रम से चार रेखा दे। इन चार रेखाओं में क्रम से सात कुण्ड बनेंगे। कुल अट्ठाइस कुण्ड होंगे। इनमें प्रत्येक कुण्ड का अन्तराल (मध्य) दो हाथ छः अंगुल का होगा।

अब अवशिष्ट बहत्तर कुण्डों को आठ नवमांशों में विभक्त करे—

उसका प्रकार यह है कि—आठ नवमांशों में अलग-अलग दो-दो कुण्ड बनने से सोलह कुण्डों की व्यवस्था हो जायगी। तदनन्तर उन कुण्डों के बाहर परिधि रूप से तीन-तीन कुण्ड फिर बन जाने से चौबीस कुण्ड हो जायँगे। इसी तरह पुनः उसी आठ नवमांशों के परिधि रूप से चार-चार कुण्ड बनने से बत्तीस कुण्डों की व्यवस्था से गिनती में सौ कुण्ड हो जाते हैं।

इन कुण्डों का अन्तराल दो हाथ छः अंगुल ही होगा। ऐसी परिस्थिति में कुण्डों के समीप बैठने से उन कुण्डों की ज्वाला आदि द्वारा महान् क्लेश होगा। अतः यह पक्ष हेय ही है।

(१) इन कुण्डों में अग्निस्थापन नैर्ऋत्य कुण्ड में सर्वप्रथम करे। वही आचार्य कुण्ड होगा। क्योंकि कोई भी कुण्ड अत्यन्त मध्य स्थित न होने के कारण प्रागुदपवर्ग प्रचारानुरोध से नैर्ऋत्य कुण्ड ही आचार्य कुण्ड स्वीकृत न्यान्य प्राप्त है। यह शान्तिमयूख आदि निबन्धों का जोरदार मत है। प्रयोगपारिजातकार तो किसी तरह मध्य कुण्ड मानकर उसी को आचार्य कुण्ड कह उसी में सर्वप्रथम अग्नि स्थापन करना चाहते हैं। यह ठीक नहीं। अतः नैर्ऋत्य कुण्ड से ही सर्वप्रथम अग्नि प्रणयन करे।

(२) कुछ आधुनिकों का मत है कि—

कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि प्रच्यादिषु विचक्षणः।
पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशानदिग्गोचरे ॥ और

'आचार्य कुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः'। इन वचनों से ईशान

आदि दिशा का कुण्ड आचार्य कुण्ड हो सकता है। क्योंकि इन वचनों का कोई बाधक वचन नहीं है।

पर यह कहना ठीक नही है। क्योंकि मत्स्य-पुराणादि में प्रतिष्ठा आदि प्रकरण में पठित होने से वहाँ ही चरितार्थ होंगे।

शान्तिमयूखोक्त प्रकार से शतमुख कुण्ड निर्माण —

सौ हाथ समचतुरस्र मण्डप का त्रिभाग हो जाने पर उस त्रिभाग के मध्य नवमांश में पूर्व दिशा में—दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा में (उदक् संस्थ) पाँच कुण्डों की एक पंक्ति लम्बी बनावे। इसी तरह पश्चिम दिशा में उदक् संस्थ-(दक्षिण से उत्तर) तीन पंक्ती और हो जाने पर उनमें भी पाँच पाँच कुण्ड बनेंगे। इस तरह बीस कुण्डों की व्यवस्था हो जायगी।

इन पंक्तियों का अन्तराल आठ हाथ सात अंगुल होगा। और प्रत्येक कुण्ड का अन्तराल साढ़े सात हाथ सात अंगुल होगा।

अब अवशिष्ट अस्सी कुंडों की व्यवस्था बतलाते हैं—

उस मण्डप में बचे आठ नवमांशों के भी मध्य में दो दो कुण्ड और बनने से सोलह कुंड होगे। फिर उन्ही आठ नवमांशों में बने दो दो कुंडों के बाहर दिशा और विदिशा में आठ आठ कुंड और तैय्यार हो जाने से अस्सी कुण्डों की सुगमतया व्यवस्था हो जाती है। इस तरह सौ कुंड गिनती में आ जाते हैं।

(१) गौतमः—

कोटिहोमेषु नियमा बहवः सन्ति पार्थिव।
मौनं पद्मासनं ध्यानं हविष्यान्नं च भक्षणम् ॥
स्थण्डिले शयनं गन्धताम्बूलादीनि वर्जयेत्।
मन्त्रान्तमुच्चरन् हुत्वा ह्यमिरुत्तानपाणिना ॥
सत्यज्य विविधानेतान् ऋत्विजो वर्तयसदा।
दोषाङ्गियमसन्त्यागान् न होमफल मश्नुते ॥

(२) कोटिहोमे त्वाचार्यप्रार्थने विशेषः—

त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणः ।
त्वत्प्रसादेन विप्रेंद्र सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥
आपदुद्धिनाशाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् ।
कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकालिकम् ॥

दशमुख में पद्धति मत और किसी निबन्ध का मत—

पचास हाथ के समचतुरस्र मण्डप के नव भाग हो जाने पर उन नव भागों में क्रम से—कुंडों का निर्माण होगा। जैसे—मण्डप के निर्ऋतिदेश में—प्रथम कुंड, दूसरा—कुंडपश्चिम देश में, तीसरा कुंड—वायुकोण में, चतुर्थ कुंड—दक्षिण दिशा में, पाँचवाँ कुंड—मध्य के दक्षिण भाग के आधे हिस्से में और छठवाँ कुंड—मध्य के उत्तरार्ध भाग में होगा।

यहाँ यह बात आवश्यक बतला देना चाहिये कि—कुछ भाग पूर्व-दिशा से और कुछ भाग पश्चिम दिशा से लेकर ही कुंड द्वय बनवाना चाहिये। अन्यथा कुंड बनने में बाधा पड़ सकती है।

सातवाँ कुंड—उत्तर दिशा में, आठवाँ कुण्ड—अग्निदिशा में नवमा कुण्ड—पूर्वदिशा में और दशवाँ कुंड ईशानकोण में होगा। इन कुण्डों में आचार्य कुंड नैर्ऋत्य दिशा का ही प्रागुदपवर्गप्रचारानुरोध से होगा। जिसे प्रथम कुंड शब्द से कहा गया है। नवग्रहयाग में तो सर्वप्रधान सूर्य होने से मध्य का ही कुंड आचार्य कुण्ड होगा, यह शान्तिमयूखोक्ति ठीक है।

दशमुख शान्तिमयूख के मत में—

पचीस हाथ या पचास हाथ के समचतुरस्र मण्डप के नवभाग बराबर-बराबर के कर लेने पर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा का ज्ञान मात्र हो ऐसे मध्य नवमांश से बिलकुल सटे चार कुंडों को बनावे। तात्पर्य यह है कि ये दिशाओं के कुंड मध्यनवमांश में ही अधिक रहेंगे,

और उनके बनाने की व्यवस्था ऐसी हो जिससे ब्राह्मण भी सुख से बैठ जांय। और पूर्वदिशा के नवमांश में प्रधान वेदी होगी। बाकी बचे ७ नवमांशों में से छः में क्रम से छः कुण्ड बनवा दे। एक नवमांश बिलकुल ही छोड़ दे। इस तरह दस कुण्डों की व्यवस्था होगी। इसी पक्ष को द्वैतनिर्णयसिद्धान्त संग्रह आदि निबन्धों ने भी लिखा है।

शतमुख मण्डपका निर्माण प्रकार—

सौ हाथ समचतुरस्र—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से तैय्यार हो जानेपर उस मण्डप के चारों दिशाओं से सूत्रों द्वारा दस विभाग करने से प्रत्येक दस-दस हाथ परिमित सौ कोष्ठ होंगे। यह कुण्डरत्नावली और शान्तिसार का पक्ष है।

(१) प्राचीसूत्रमुदकसूत्रं च दशधा विभज्य दश दश प्रागग्राणि दद्यात्। तेन दशहस्ताः शतं कोष्ठयः सम्पद्यन्ते। तेषां च मध्यं प्रसाध्य द्विहस्तकुण्डानि कुर्यात्। तानि चैकैकस्यां वीथ्यां दश दशेत्येव दशवीथी कुर्यादिति [लिखितकोटिहोमपद्धतौ]।

द्विमुख मण्डप और कुण्ड—

पचीस हाथ के समचतुरस्र मंडप का की भाग आठ हाथ आठ अंगुल करे। इस प्रकार नवभाग करने पर मध्य नवमांश में—पूर्व दिशा से और पश्चिम दिशा से कुछ हिस्सा लेकर उसके मध्य नवमांश में मिलाकर उसमें दो कुंड दक्षिणोत्तर बना दने से द्विमुख कुंड तैय्यार हो जायँगे। इसमे आचार्य कुंड दक्षिण दिशा वाला होगा। वही प्रधान कुंड कहा जायगा।

(१) क्रियासारे—

नारिकेलदलैर्वापि पल्लवैर्वाथ वेणुभिः।
आच्छाद्या मडपाः सर्वे द्वारवजे तु सर्वतः॥

शारदातिलके—

वितानर्ध्वजाद्यैरलं कुर्वीत मंडपम् ।

गौतमीतन्त्रे—

पुष्पमालावितानाद्यं सर्वाश्चर्यमनोहरम् ॥

सिद्धान्तशेखरे—

कृतपल्लवमालाद्यं वितानैरुपशोभितम् ।

विचित्रवस्त्रसंछन्नं गुल्यस्तंभविभूषितम् ॥

फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्दर्पणैश्चामरैरपि ।

भूषितं मण्डपं कुर्याद्रत्नपुष्पसमुज्वलम् ॥

मण्डपस्तंभविषये—

कालोत्तरे—वस्यचन्दनपुष्पाद्युं वस्त्रचन्दभूषिताः ।

हयशीर्षपञ्चरात्रे—

दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तयान् वस्त्रैर्विभूषयेत् ॥

(२) कुंडकल्पलतायाम्—कोटिहोमं प्रकृत्य—हस्तैश्चतुर्भिस्तन्मध्ये कुंडं कार्यं समन्ततः । तस्य चाकारविशेषानुक्तेः ।

श्रौत और कर्मों में कुंड तथा मंडप मुख्य हैं या गौण स्मार्तादि—

श्रौत—स्मार्त और तान्त्रिक ये तीन प्रकार के कर्म हैं । पौराणिक कर्म तान्त्रिक में ही अन्तर्भूत हैं । पौराणिक कर्म को पृथक् मानने वाले चार प्रकार के कर्म मानते हैं ।

श्रौत और स्मार्त कर्म के प्रतिपादक आश्वलायन आदि श्रौत सूत्र गृह्यसूत्र, मनु आदि स्मृति और गौतमादि धर्मसूत्र भी हैं । इनमें कुंड-मंडप की परिभाषा देखने में नहीं आती है । परन्तु मंडप का यज्ञशाला शब्द से और कुंड का वेदी शब्द से व्यवहार होता है ।

वेदं कृत्वा वेदिं करोति । वेद्यामिव हुताशनः ।
अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः ।

इत्यादि स्थलों में वेदी शब्द से कुंड का ग्रहण है। और यज्ञशाला, पत्नीशाला स्थलों में मंडप के लक्षण से यज्ञशाला आदि का लक्षण भिन्न है। तान्त्रिक तो सम चतुरस्र चार द्वार, चार उपद्वार और मध्य में ऊंचा मंडप कहते हैं। वैदिक तो एक द्वार, पताका आदि रहित तथा मध्योन्नति रहित मंडप बनाते हैं। योनी गर्त आदि सहित कुंड तान्त्रिकों को अभिमत है। वैदिकों को कुंड में योनि गर्तादि अभिमत नहीं हैं।

कुंड-मंडप की आवश्यकता—

नित्यं नैमित्तकं हित्वा सर्वमन्यत्समंडपम्—कोटिहोमपद्धति और मत्स्योक्त वचन से काम्यकर्म में मंडप आवश्यक है। नित्य तथा नैमित्तिक कर्म में ऐच्छिक है। नित्यं नैमित्तिकं होम स्थण्डिले वा समाचरेत्। शारदातिलक मत से नित्य और नैमित्तिक कर्म स्थाण्डिल या कुंड में करें, परन्तु काम्यकर्म को कुंड में ही करे।

कर्मभेद उनके उदाहरण विभिन्न मतों से—

कर्म तीन प्रकार के हैं, नित्य नैमित्तिक और काम्य। अहरहः सन्ध्यामुपासीत। पञ्चयज्ञान्न हापयेत्। यावज्जीवमग्निहोत्रं सुहुयात्। दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत इत्यादि नित्यकर्म हैं। षण्णवतिश्राद्धादि नैमित्त-वश किये जाते हैं। नित्य और नैमित्तिक कर्म न करने से प्रत्यवाय होता है। जिस कर्म को न करने से प्रत्यवाय न हो और करने से वृद्धि हो उसे काम्य कहते हैं। जैसे—तीर्थयात्रा, व्रत, दान, यज्ञ, शान्तिक तथा पौष्टिक—यह मीमांसक मतानुसारिकर्मकाण्डियों का सिद्धान्त है। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ॥ कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् (भ० गी० अ०

१८) इत्यादि वचन से सिद्ध है कि फलाभिलाषी न होकर क्रियमाण-काम्यकर्म भी निष्काम कर्म होते हैं। यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है।

कुण्ड-मण्डप का प्रयोजन—

तीन प्रकार के कर्म होते हैं—दृष्टफल अदृष्टफल और दृष्टफलक। वृष्टिकामः कारीर्या यजेत इत्यादिश्रुतिसे विहित कारीरेष्ट्यादि वृष्टिरूप ऐहिक फल का जनक होने के कारण दृष्टफलक कर्म है। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्। इत्यादि विधिबोधित अग्निहोत्रादि अदृष्टफलक कर्म है। दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् इत्यादि इन्द्रियकामना के लिये अग्निहोत्र-विधि दृष्टादृष्टफलक है। अग्निहोत्रविधि स्वस्वरूप से अदृष्टफलको दधिरूप गुणांश से दृष्ट इन्द्रियफल को भी उत्पन्न करता है। प्रश्न—प्रतियोगी और अभाव का विरोध होने के कारण दृष्ट और अदृष्ट का एकत्र समावेश कैसे होगा। उत्तर—हम दृष्टादृष्ट का एकत्र समावेश नहीं कहते हैं किन्तु दध्नेन्द्रियकामस्य जुहुयात् यह गुणविधि दृष्टादृष्टफलक है। इतना ही कहते हैं, यह विरुद्ध नहीं है। घट और घृध्वंस दोनों का कारण जैसा दण्ड है। इसी प्रकार कुण्ड और अदृष्ट उभय फलक हैं। वप्र-गर्तादि अंश से हवि का सम्यक् पाक होता है और होताओं को ज्वाला आदि सम्बन्ध नही होता। इसलिये कुण्ड दृष्टफलक है और नहो, भी योनी, कण्ठ आदि अंश से अदृष्टफलक भी है वहाँ दृष्टफल सम्भव नहीं है विधिबलात् नाम्यादि निर्माण होता है। अतः स्वर्गादि अदृष्टफल की वहाँ कल्पना की जाती है। स स्वर्गः सर्वान् प्रत्यविष्टत्वात् इत्यादिशास्त्र से अश्रुतफल में स्वर्गफल माना जाता है। एवं मण्डप भी आतप वर्षादि का निवारक होने से दृष्टफलक है और स्तम्भपरिमाण, स्तम्भनिवेश का प्रकार विशेष इतर दारु का सन्निवेशप्रकारविशेष इत्यादि नियमांश से अदृष्टफलक भी है। जैसे—व्रीहीनवहन्ति यहाँ पर अवहनन विधि तण्डुलनिष्पादक होने के कारण दृष्टफलक है और अवहनन से ही निष्पादक करना नखविदलनादिना नहीं करना इत्यादि नियमांश से अदृष्टफल भी है।

मण्डप का लक्षण —

मण्डपोऽस्त्री जनाश्रयः—अमर०। यद्यपि मण्डपशब्द सामान्य जनाश्रयवाची है। तदनुसार उत्सार्थं गृहमण्डपान्। लतामण्डपः। समामण्डपः। इत्यादि प्रयोग भी मिलते हैं। तथापि प्रकृतोपयोगी तान्त्रिक परिभाषासिद्ध मण्डपलक्षण कहते हैं—पञ्चरात्राद्युक्तरचनावत् यज्ञायनत्वं मण्डपस्य लक्षणम्। पञ्चरात्राद्युक्त रचनावाला यज्ञ का आयतन मण्डप होता है। विशेषण न कहें तो वैदिक—यज्ञशालादि में अव्याप्ति होगी। और विशेष न कहें तो देव प्रसादादि में अतिव्याप्ति है, इसलिये दोनों आवश्यक है।

मण्डप का स्वरूप—

मण्डप दो प्रकार का है–स्थिरस्वास्तुरूप और चलवास्तुरूप। प्रतिष्ठाद्येकैककर्मोपयुक्तोऽस्थिरद्रव्यनिर्मितश्चलः। शिलेष्टकादिनिर्मितः पर्यायेण बहुकर्मोपयुक्तः स्थिरमण्डप इत्युच्यते। अस्थिर द्रव्य निर्मित चल और स्थिर द्रव्य निर्मित अचल मण्डप होता है। गर्भागारस्य पुरतः सुजनासीति मण्डपः। तत्र नन्दी तु संस्थाप्यो देवस्याभिमुखः स्थितः। तदग्रे नवरङ्गाख्ये मण्डपं रचयेत्सुधीः। तत्पुरो बलिपीठं च तदग्रे ध्वजदण्डकम्। तत ईशानदिग्भागे यागमण्डपमारचेत्। स्थिरतास्तुविधानेन शिवयागादिसिद्धये। नात्र दार्वादिनियमो भविता द्वारमेकमुदीरितम्। तदा तदा ग्रागकाले तोरणं स्यात् पृथक्-पृथक्। यद्द्रव्यं देवसदनं तद्द्रव्येणैव कारयेत्। नात्रोपयुक्तत्वदोषो भवितात्र स्वतः क्वचित्। तत्तत्कर्मसु पार्थक्याद्वास्तुहोमादिकं चरेत् (क्रियासार)।

मण्डप प्रकार—

तत्तत्कर्मोपयुक्तद्वादशहस्तादि विस्तारवान् प्रान्ते द्वादशभिर्मध्ये चतुर्भिश्चस्तम्भैर्विधृतः मध्योच्छ्रितश्चतुर्दिक्षु क्रमावतीर्णपटलश्चतुरस्रश्चतुर्दिक्षु द्वार-तोरणवान् यथोक्तदारुसन्निवेशवान् किञ्चिदुच्छ्रितभूमिकस्तान्त्रिकाभिमतो मण्डपः।

कुण्ड स्वरूप—

तत्तत्कर्मानुरूपपरिमाणवत् मेखला गर्त-कण्ठ-योनि-नाभिमत् अग्न्यायतनं तान्त्रिकाभिमतं कुण्डमुच्यते।

स्थण्डिलस्वरूप—

हवनकर्मपर्याप्तो वालुकादिद्रव्यैरास्तृतश्चतुरेकाद्यङ्गुलोत्सेधो भूभागः स्थण्डिलम्। इसमें कुण्डधर्म मेखलादि कोई मानते हैं कोई नहीं मानते हैं। अतः मेखलादि कृताकृत हैं।

न्यूनाधिकप्रमाण में भी कुण्ड और मंडप कर्मोपयोगी होते हैं या नहीं—

शास्त्रमें कुण्डका प्रमाण होमसंख्याके अनुसार विहित है। उसमें भी मुष्टिमात्रकितं कुण्ड शतार्धे सांप्रचक्षते (शारदा०) एकहस्तमिदं कुण्ड शतार्धे सम्प्रचक्षते (शारदा०) यह दो प्रकार विहित है। सिद्धान्तशेखरमें त्रिकरं व्यवस्था कोटिहोमपद्धतिकार ने की है—एतत् शीघ्रदाहिघृतादिद्रव्यहोमविषयम्। तिलयवादिस्थूलद्रव्यहोमे तु होमसंख्याविशेषाम्नातमेव कुण्ड ग्राह्यम्। घृतादि होमद्रव्यमें अल्पपरिमाण और स्थूलद्रव्यमें अधिक परिमाण का कुण्ड होता है। यह व्यवस्था विकल्प जहाँ दो वचनका तुल्यबलविरोध हो वहाँ माना जाता है। तुल्यबलविरोध विकल्पः—यह शास्त्रसिद्धान्त है। वह विकल्प दो प्रकारका है व्यवस्थितविकल्प और तुल्यविकल्प। जहां व्यवस्थापक कोई हो उसको व्यवस्थित कहते हैं। जहां व्यवस्थापक न हो उसको तुल्य कहते हैं। उदिते जुहोति अनुदिते जुहोति। यह दो वाक्य हैं। प्रथमश्रुतिसे सूर्योदयानन्तर अग्निहोत्र विहित है और द्वितीयश्रुतिसे सूर्योदयात् प्राक्सिद्ध है। ये दोनों श्रुतियाँ अग्निहोत्र विधायक नहीं हैं। अग्निहोत्र तो—यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्—इसीसे सिद्ध है, किन्तु अग्निहोत्र का अनुवाद करके तदङ्गभूत काल विधायक ये श्रुति हैं इसीलिये इनको गुणविधि कहते हैं। यद्यपि यहाँ विधिवाचक लिङ्ादि नहीं है। तथापि लट्का लिङ्त्वेन विपरिणाम होता है इन दोनों श्रुतियों का परस्परविरोध होने पर दोनों तुल्यबल हैं, अतः विकल्प

का आश्रयण होता है। वह भी जिनके सूत्रमें उदितहोम विहित है उनको उदित होमी होना चाहिये और जिनके सूत्र में अनुदितहोम विहित है। उनको अनुदित होम करना चाहिये। यह व्यवस्थित विकल्प है। अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति। नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति। इत्यादि में व्यवस्थापक न होनेसे तुल्यविकल्प है। अतः अतिरात्रयाग में षोडशिग्रह ग्रहण ऐच्छिक है। प्रकृतिमें कुण्डके विषय में न्यूनाधिक व्यवस्थित परिमाण प्रतिपादक वाक्यों में व्यवस्थापक गुरुलघुद्रव्यादि हैं अतः विकल्प माना जाता है। इस प्रकार यावत्संख्याक होममें यावत्परिमाण कुण्ड विहित है वहाँ उससे न्यूनाधिक परिमाणवाला कुण्ड कहा जाता है। एतादृश न्यूनाधिक परिमाण कुण्डका भी कहीं कहीं उपयोग होता है। न्यूनसंख्योदिते कुण्डेऽधिको होमो विधीयते। अनुक्तकुण्डे न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित् (कोटिहोमपद्धतिः) न्यूनसंख्यावाले कुण्ड में अधिक हवन होता है अधिक संख्यावाले कुण्ड में न्यूनहवन नहीं होता है। इस वचनसे न्यूनकुण्ड में अधिकहोम शास्त्रकारों को अभिमत है यह सिद्ध है। इसी प्रकार अधिक कुण्ड में न्यूनहोम भी कहीं अभिमत है कोटिहोमपद्धति में-न्यूनसंख्येऽपि स्थूलद्रव्यपरिमाणाधिक्यादावधिकसंख्योक्तमपि कुण्ड भवति। अथात्परिमाणम्—इति कात्यायनोक्तः। न्यूनसंख्यहोम में भी अधिकहोमसंख्यावाला कुण्ड होता है यह लिखा है कुण्डरत्नावली में भी आहुति तारतम्यसे कुण्डविस्तार कहकर अन्तमें कहा है कि—कुण्डव्यवस्था पृथुसूक्ष्ममानाद् द्रव्यस्य कार्या स्वधिया सुधीभिः कुण्डव्यवस्था द्रव्यके स्थूल और सूक्ष्ममानसे अपनी बुद्धिसे विद्वानों को करनी चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि—चर्वादिगुरुद्रव्यहोम में अधिक प्रमाण भी कुण्ड ग्राह्य है। शतार्धेरत्निः स्यात्—इत्यादि वचनसे शतार्ध शत सहस्रादि हवन में कुण्ड का विधान सिद्ध हुआ। परन्तु शतादि आन्तरालिक संख्याक होम में कुण्ड परिमाण कितना कितना हो इस शंकाको दूर करने के लिये 'न्यूनसंख्यादिते' यह वचन है। इसलिये नवशत अष्टशतादि अनुक्त कुण्डकहोम सहस्रहोमोदित कुण्ड में नहीं करना किन्तु पूर्वकथितशत-

संख्याकहोमकुण्ड में ही करना यह सिद्ध होता है। इस प्रकार 'न्यून-संख्योदिते' यह वचन अनुक्त कुण्डक आन्तरालिक होम में न्यून कुण्डका विधायक हुआ। तब यही वचन अधिक कुण्ड में गुरुद्रव्यक न्यून होम का निषेध नहीं कर सकता है। क्योंकि दो कार्य का विधान करने से वाक्य भेद दोष होता है। पूर्वार्द्ध से न्यूनकुण्ड में अधिक होमविधान और उत्तरार्द्धसे अधिक कुण्ड में न्यून होम का निषेध। विधानद्वय करने में 'अनुक्त कुण्डों 'न्यूनस्तु' यह अनुक्त कुण्ड स्वरूप जो होम का विशेषण है यह बाधित होता है। कदाचित् कहें कि—

न्यूनानिधिकं न कर्तव्यं कुण्ड कुर्याद्धिनाशनम् परशुरा०) इस वचनान्तर के रहते अधिक कुण्ड उपादेय नहीं हो सकता है, तो इसका उत्तर यहहै कि यह वचन भी प्रकृतार्थ साधक नहीं है। किन्तु इस वचन का हो नाधिकाङ्ग लक्षण रहित कुण्ड निषेध में ही तात्पर्य है। इस वचन के पूर्व—

'आयामखातविस्तारायथातथं तथातथम्' यह वचन है और 'खातेऽधिके भवेद्रोगी होने धेनुधनक्षय' यह उत्तर वचन है। इस प्रकार पूर्वापरपर्यालोचनया अलक्षण कुण्ड का निषेधक ही परशुराम वचन है, कि अधिक कुण्ड में अल्पाहुति का नहीं यह स्पष्ट है।

कोई विद्वान्—अनुक्तकुण्डो न्यूनस्तु नाधिके शस्यते क्वचित्। यहाँ क्वचित् शब्दसे अधिक कुंडमात्रमें न्यूनहोम का निषेध करते हैं परन्तु वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चार हाथ के कुण्ड में जिसमें दो-दो हाथ के चार भुजमान हैं वहाँ पर 'खातं क्षेत्रसमं प्राहुः' इत्यादि शास्त्र से दो हाथ के खात करने पर कुंडावकाशरूप क्षेत्रफल आठ हाथ का होता है, एवं द्वित्रिहस्तादि कुंडमें सर्वत्र क्षेत्रफल के आधिक्य होने पर भी द्विहस्त त्रिहस्त चतुर्हस्त कुंड यही व्यवहार प्रामाणिक कहते हैं, विचार करने पर तत्तद्धोम के प्रति ये भी अधिक कुण्ड हैं। तो क्वचित् शब्द से यदि अधिक कुण्डत्वावच्छिन्न में न्यूनहोमसामान्य निषेध माना

जाय तो इन कुण्डों का भी निषेध हो जायगा। कोटिहोमपद्धति में स्पष्ट कहा है कि – यद्यपि द्विहस्तत्रिहस्तादिकुण्डेषु हस्तमात्रमेव खातं युक्तम् अन्यथा क्षेत्रफलाधिक्यात्। तथापि वचनादधिकमपि खातं न दोषाय, आगे चलकरलिखा है –

एतेन कुंडभूतलमेव क्षेत्रफलमितिवदन्तः परास्ता ।
गर्तस्य न्यूनाधिक्येऽपि भूतले प्रमाणाधिक्यन्यूनत्वाद्यसंभवात् ।
सिद्धस्य भूतलस्य फलत्वायोगाच्च ।
साध्यस्त्ववकाशः फलत्वेनाभ्युपगन्तुं युक्तम् ।
न च ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादौ सिद्धस्यम्
स्वर्गस्य कथं फलत्वाभ्युपगम इत्याशङ्कनीयम् ।
तत्रापि साध्यस्य कर्तृ स्वर्गसम्बन्धस्यैव फलत्वमिति सन्तोष्टव्यम् ।

कुंडभूतल ही क्षेत्रफल है, यह भी ठीक नहीं है। जिस प्रकार द्वित्रि हस्तादि कुण्डमें क्षेत्रफलके आधिक्य होने पर भी न्यूनहोम वचनबलसे होता है। इसी प्रकार चर्वादिगुरुद्रव्यहोम भी में अधिक कुंड ग्रहण शास्त्रकारों को अभिप्रेत है। इससे सिद्ध हुआ कि न्यूनाधिक कुण्ड भी वचनबल से कहीं कर्मोपयोगी होता है।

एवं न्यूनाधिक मण्डप भी कर्मोपयोगी होता है। विशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपंकूटमेव वा (कोटिहोमप०)। लक्षणरहित मण्डप को कूटमण्डप कहते हैं। यह कूटमण्डप स्वलक्षण मण्डप के अभाव में है।

सलक्षण मण्डपासम्भवे छायामात्रं कर्तव्यम्।
तत्र अपूर्वप्रयुक्तत्वाद्धर्माणां यवेष्विव व्रीहिधर्माः
मण्डपपूजादयोऽप्यत्र भवन्ति ॥ (कोटिहोम पद्धतिः)

अलक्षण मण्डप में भी यवों में व्रीहीधर्म के सदृश मण्डप पूजादि होते हैं। तात्पर्य यह है कि दर्शपूर्णमासयाग में पुरोडाश के लिये व्रीही

संस्कार के लिये—व्रीहीन् प्रोक्षति । व्रीहीनवहन्ति । इत्यादि श्रुति हैं । व्रीही के अभाव में यव गृहीत होते हैं । वहाँ यवों का भी प्रोक्षणादि संस्कार हो या नहीं इस संशय में 'व्रीहीन् प्रोक्षति' इत्यादि विधिवाक्य में यव का ग्रहण नहीं है । अतः यव का प्रोक्षणादि संस्कार न होना चाहिये ऐसा पूर्वपक्ष प्राप्त हुआ । सिद्धान्त यह है कि व्रीही प्रतिनिधियों का भी प्रोक्षणादि संस्कार होता है । असंस्कृत द्रव्ययाग योग्य नहीं होते हैं । और अङ्ग कर्मसे जनित अपूर्वप्रधान कर्मसाध्य परमापूर्व को उत्पन्न करते हैं वही परमापूर्व धर्म पुण्य इत्यादिशब्दों से कहा है । यदि अङ्गजन्य अपूर्व लुप्त कर दिये जाँय तो परमापूर्व विकल होगा । परमापूर्व विकल होने से स्वर्गादि इष्ट फल का सार्थक न होगा । इसलिये अङ्गापूर्व के लिये यवों में भी प्रोक्षणादि संस्कार होता हैं । इसी प्रकार मण्डपप्रतिनिधित्वेन उपादीयमान छायामण्डपमें भी अपूर्वोत्पत्ति के लिये वास्तुहोम मण्डपपूजादि होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि छाया मण्डप भी कर्मोपयोगी है । इससे वह भी सिद्ध हुआ कि अलक्षणमण्डपनिन्दा परक वचन सलक्षण मण्डप सम्भव मे अलक्षण मण्डप निषेधपरक हैं ।

स्थण्डिल का स्थान—

कुण्डमेवं विधं न स्यात् स्थण्डिले वा समाचरेत्— इत्यादिप्रमाणसे स्थानापन्नं स्थण्डिल का भी वही स्थान है जो कुंड का है। तत्स्थानापन्नस्तद्धर्म लभते स्थानधर्माणां स्थाण्यतिदेशः । कुंडस्थानापन्न स्थण्डिल भी कुंडस्थान में ही होता है स्थानान्तर में नहीं । सीमाभावे पूतीकानभिषुणुयात्— इत्यादि स्थल में सोम स्थानापन्न पूतीकाओं में भी क्रय आप्यायनादि सब धर्म होते हैं। अतः हवन प्रधानकर्म में एक कुंड पक्ष में मध्य में कुण्ड होना निश्चित है तो कुण्डाभाव में स्थण्डिल भी मध्य में ही होगा । यदि मध्य में कुण्ड है और १०० । २०० आहुति

भी मण्डप में करना है। तब भी मध्यस्थित कुण्ड में अधिक प्रमाण में भी वह होना उचित है, कुण्डापार्श्व में स्थण्डिल निर्माणकर नहीं।

कुण्डसिद्धिके अनुसार कुण्डों का नाप–

(क) एक हाथ के कुण्ड में चौबीस अंगुल होता है।

(ख) दो हाथ के कुण्ड में चौतीस अंगुल होता है।

(ग) तीन हाथ के कुण्ड में इकतालीस अंगुल पाँच यव होता है।

(घ) चार हाथ के कुण्ड में अड़तालीस अंगुल होता है।

(ङ) पाँच हाथ के कुण्ड में तिरपन अंगुल पाँच यव होता है।

(च) छः हाथ के कुण्ड में अट्ठावन अंगुल छः यव होता है।

(छ) सात हाथ के कुण्ड में तिरसठ अंगुल चार यव होता है।

(ज) आठ हाथ के कुण्ड में छाछठ अंगुल सात यव होता है।

(झ) नव हाथ के कुण्ड में पचहत्तर अंगुल होता है।

(ञ) दस हाथ के कुण्ड में पचहत्तर अंगुल सात यव होता है।

(१) पौष्कलसंहितायाम्—

नाकुंड हवनं यस्मात्सिद्धिकृन्मन्त्रयाजिनाम्।
तस्माकुण्ड सदा कार्यं सौत्रं वा जङ्गमं स्थिरम्॥

(२) उत्तरतन्त्रे—

नवैकादशकुण्डानि कुर्यादुत्तममण्डपे।
चतुष्कुंडी मध्यमे स्यात्कानिष्ठेककुण्डकम्॥

पुरश्चर्यार्णवे—

नव पञ्चाथ चैकं वा कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।

(३) क्रियासारे—

दिक्षु द्वाराणि चत्वारि कुर्यान्मण्डप मध्यतः।

(४) कुंडकल्पलतायाम्—

वर्जयेन्निम्बकाष्ठानि कशरार्कभवानि च।
अगस्तिशिग्रुवृक्षोभैर्मण्डप नैव कारयेत् ॥

(५) यवादूनं प्रमाणं तु मण्डपादौ न चिन्तयेत् ।
सूत्रस्याधो विलीयन्ते यूकालिक्षादयस्तथा ॥

(६) पञ्चमेखला पक्ष में मेखलाओं को यथारुचि रंग द्वारा सुशोभित करे॥ कोटिहोमपद्धति ॥

(७) ध्वजापतादि अधिक भी मण्डप की शोभा बढ़ाने में रख सकते है। दश दिक्पालों की ध्वजा और पताकाओं से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है यह कोटिहोम पद्धतिकार लिखते हैं।

(८) सांवपुराणे-गरुत्मांस्तु ध्वजे विष्णोरीश्वरस्य ध्वज वृषः। ब्रह्मणः पङ्कजं कार्यं रवेर्व्योम स्मृतो ध्वजे॥ मयूरः कार्तिकेयस्य हेरम्बस्य च मूषकः। कुञ्जरो देवराजस्य महिषो ध्वजे॥ सिंहोध्वजे तु दुर्गाया इत्येषा ध्वजकल्पना। यस्य यो वाहनः प्रोक्तो ध्वजस्तस्य च एव तु॥

(९) रक्तचन्दनकाष्ठैश्च खदिराश्वत्थकिंशुकैः। अन्यैश्चैवापि याज्ञीयैः कर्तव्यं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥ काण्ठैरमीभिः कर्तव्यं मुसलोखलं तथा।

(१०) पञ्चरात्रे-विचित्रस्तम्भविन्यासं रचना चरितं शुभम्। धमबिर्गमनोपेतं मण्डपं कारयेद् बुधः।

(११) मेरुतन्त्रे—मण्डपं मण्डयेद्रार्द्रशाखाभिस्तु समन्ततः। विमलेन वितानेन पताकाभिश्च भूषयेत् ॥ दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान् वस्त्रैविभूषयेत्। कलशैर्घण्टिकाभिश्च साधारैर्गण्डकैस्तथा ॥ मण्डप भूषयित्वैवं जाह्नवीवालुकां शुभाम्। बाह्यदेशेषु विकरेत् पञ्चगव्येन प्रोक्षयेत् ॥

(१२) प्रतिमां पिण्डिकां वापि कुंडं मण्डपमेव च। तोरणं च ध्वजं चैव गुणाढ्यं पात्रमेव च॥ मानहीनं न कर्तव्यं फलप्राप्त्यर्थिभिः सदा॥

(१३) कुण्डार्के—यस्मात् ग्रन्थाच्चातुरस्रादिकं कृतं तस्मादेव पद्मादिकर्तव्यमितिनियमः। अथवा यस्मात्पद्मादिकं तस्मादेव चतुरस्रादिकं कार्यमित्यपि। किन्तु नामाकारसदृशस्य क्षेत्रफलस्य च नियमादेकस्मादेकमपरस्मादेकं कृत्तमपि दोषो नास्तीतिसिद्धम्। अत एव कुण्डसिद्ध्यादेरष्टास्रादिकं कुण्डार्कादेः पद्मादिकं याज्ञिकाः कुर्वन्ति।

(१४) पवमानपद्धौ—समुद्रगा नदीतीरे सङ्गमे वा शिवालये। आरामे विष्णुगेहे वा देवखातादिसन्निधौ॥ गृहस्येशानभागे वा गङ्गातीरे विशेषतः। स्थण्डिले पर्वताग्रे वा गृहाग्रे वा गृहाङ्गणे॥ मण्डपस्तु प्रकर्तव्यः शुभलक्षणलक्षितः। गृहाग्रे यदि कुर्वीत तत्समां कुंड परित्यजेत् ॥

(१५) अर्धचन्द्रकुण्ड—चतुरस्रक्षेत्र का चौबीस हिस्सा कर सवा दो अंगुल पूर्व दिशा में सवा दो हाथ पश्चिम दिशा में छोड़कर दक्षिणोत्तर रेखा देने से अर्धचंद्र कुण्ड बन जाता है।

दूसरा प्रकार—चतुरस्र कुण्ड में नव रेखा कर आदि और अन्त में एक-एक भाग को छोड़कर दक्षिणोत्तर रेखा द्वारा देने से तय्यार हो जाता है।

(१६) पद्मकुंड—बारह अंगुल चार यव का एक वृत्त बनाकर उसके बाहर पन्द्रह अंगुल एक यव और दो यूका का दूसरा वृत्त बनाकर

रेखा द्वारा कुंड बन सकता है। या छः छः अंगुल के पाँच वृत्त बनाकर पद्म बनावे। देखिये—विशेष निर्णय सिन्धु में।

(१७) कुंडकौमुद्याम्—नित्यहोमे च दीक्षायां देवतास्थापनं तथा। शान्तौ पुष्टौ च साहस्रे होमे कुंड करात्मकम्॥

(१८) उत्तमा नवकुंडी स्यात्सप्तकुंडी च मध्यमा। पञ्चकुंडाक्षमा प्रोक्ता कैश्चिमात्स्यवचोबलात्॥

(१९) कुंडमण्डपे—पञ्चहस्ता ध्वजाः प्रोक्ता वैपुल्येन द्विहस्तकाः। अथवा बाहुमात्राः स्युः सर्वा वितस्तिविस्तृताः॥

(२०) अरणी की लम्बाई चौबीस अंगुल, चौड़ाई छः अंगुल और ऊँचाई चार अंगुल होती है।

(२१) जिस लकड़ी में रज्जू लपेट कर मन्थन किया जाता है उसका नाम चात्र है। वह बारह अंगुल का होता है।

(२२) चात्र को रोकने के वास्ते छिद्र युक्त जो ऊपर से लगाया जाता है। उसका नाल ओविली है। उसका भी प्रमाण बारह अंगुल होता है।

(२३) जिस रस्सी से मन्थन किया जाता है। उसका नाम नेत्र है।

(२४) चात्र के नीचे के हिस्से में उत्तरार्णि से पृथक कर जो कील लगायी जाती है। वह आठ अंगुल की होती है। उसका नाम प्रमन्थ है।

(२५) मन्थन के समय में अरणी को पृथ्वी पर केवल न रखकर कंबल मृग चर्म आदि के ऊपर रखने का विशेष नियम है।

(२६) कोटिहोमे—मण्डपे मध्यमाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः। समन्ततस्त्रिभागेन परितो द्वादशापरे॥ शालवृक्षोद्भावाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः। समन्ततास्त्रिभागेन द्वादशान्ये च वेदितः॥

(२७) क्रियासारे—आच्छाद्य मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जन्तु सर्वतः ।

(२८) महाकपिलपञ्चरात्रे—मण्डपस्य प्रतिदिशां द्वारण्येतानि कारयेत् ।

(२९) कुंडरत्नावल्याम् –एकं कुंड शुभदं मध्ये शान्तौ जपाङ्ग-हवनेषु । आरभ्यैकाद्वशनीं लघुमहदतिरुद्रहवनविधौ ॥

(३०) मण्डपः—महारुद्र-विष्णुयाग- देवप्रतिष्ठा - जलशयाद्युत्सर्ग-राज्यभिषेक-तुलादानादि-लक्षहोमादि सकलस्मार्त-पौराणिक-तान्त्रिक-शान्तिक-पौष्टिककर्मोपयुक्तः अष्ट-दश-द्वादश-चतुर्दश-षोडशा-ष्टादश-विंशति - चतुर्विशति - अष्टाविंशति - द्वात्रिंश - दादिहस्तविस्तारवान् कोटिहोमे पञ्चाशद्धस्त-शतहस्तविस्तारवन् प्रान्ते द्वादशभिः मध्ये चतुर्भिः स्तम्भैर्विधृतो मध्योच्छ्रितः चतुर्दिक्षु-द्वार-तोरणद्वारवान् चतुर्दिक्षु क्रमावतीर्णपटलः यथोक्तदारुसन्निवेशवान् ध्वजपताकादियुतः किञ्चिदुच्छ्रितभमिकः चतुरस्त्रः तान्त्रिकाभिमतः पञ्चरावाद्युक्तर-चनावान् स्थण्डिलविशेषो मण्डप इत्युच्यते ।

(३१) देशश्च स्वीय एव प्रशस्तो न परकीयः । परकीयप्रदेशेषु कृतं भवति निष्फलमिति दोषप्रवणात् । असम्भवे अनुज्ञया परकीयभूमावपि कुण्डादिकं कर्तव्यम् । तथा च महाभारते –

नानुज्ञातभूमिहि यज्ञस्य फलमश्नुत इति ।

नदीतीरादौ तु परिग्रहादेव स्वत्वसिद्धेरदोषः ॥

(३२) परशुरामकारिकायाम्—सत्यवादी सदाचारी विवेकी स्थिरसाहसः । शास्त्रज्ञोऽथ विनीतश्च ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । ब्रह्मणो-वाऽथ शिल्पी च ये चान्ये चाप्रमादयः । परीक्ष्य च कारयेत्कर्म तत्सर्व सफलं भवेत् ।

(३३) कुंडोद्योते—हस्तोन्नतं तदर्धं वा मण्डपस्थलमत्र तु ।

(३४) गृहे देवालये वापि सङ्कीर्णं यत्र दृश्यते। तत्र कार्यं मण्डपज्ञैः संश्लिष्टं मण्डपद्वयम् ॥

(३५) मण्डपार्थं द्वादशाङ्गुलोच्चं स्थलं कुर्यात्। स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मंडपस्थलमीरितमिति सिद्धान्तशेखरात्। महाकपिलपाञ्चरात्रे तु हस्तोच्चमुक्तम्। उच्छ्राये हस्तमात्रस्यात्सुसमं च सुशोभनमिति। भाट्टैतु जलाशयोत्सर्गविधौ उच्छ्रितं विनैव सुसमभूमौ मण्डपरचनोक्ता। मात्स्यादावुच्छ्रितेरनुक्तत्वादिति तदाशयः। अतो मण्डपभूम्युच्छ्रितेः कृताकृतमिति प्रतिष्ठेन्दौ।

(३६) पञ्चरात्रे—मण्डपाः कर्मषु प्रक्तो अल्पामध्यातथोत्तमाः। यथा देशं यथाकालं प्रयोज्यास्ते विचक्षणैः ॥

(३७) परशुरामकारिकायाम्—अथवा सप्तहस्ता ये रोपणीया निजेच्छया। क्वचित्तु बाह्यस्तम्भाः सप्तहस्ता—इत्युक्तं अस्मिन्पक्षे निखननं अनियतं च स्तम्भपञ्चमांशमित्यपि तत्रैव रुद्रकल्पद्रुमे। मध्यस्तम्भाः—अष्टहस्ता नवहस्ता वा भवन्तीत्यपि रुद्रकल्पद्रुमे ॥

(३८) खननेऽवटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरे। शारदाति०। आग्नेयवटक्रमेण सर्वेष्ववटेषु सूत्रसंपातस्थानाद् बहिः 'स्तंभा निखेया' इति नारायणभट्टकमलाकरभट्टादयो बहवः। स्तम्भपरिमाणाह—'एते स्तम्भाः सूत्रसम्पातस्थशङ्कुसंलग्नाद्बाह्यदेशे निखेया। तुलादौ वेदिकोणेष्वमुक्तवदेश्चतुरस्त्रां समां तथेति क्रियासारदौचतुरस्त्रत्वोकर्मव्यातम्भास्तावत्सूत्रसंपातशङ्कुना बहिः सिद्धाः। अन्यथा चतुरस्त्रत्वभङ्गापातात्। इति कोटिहोमपद्धतिः।

(३९) पञ्चमांशं खनेद् भूमौ सर्वसाधारणो विधिः।

(४०) स्तम्भानां स्थूलतात्वनुक्तत्वाद्यथेच्छमिति केचित्। दशाङ्गुलप्रमाणम् - तोरणस्तंभस्थौल्यमेवात्र ग्राह्यमेकत्र दृष्टत्वाज्यादित्यन्ये। दशाङ्गुलप्रमाणेन तत्परीणाह उरीत। इति शारदा०।

परिणाहो विशालता। ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रकारेण चैकत्रिंशदङ्गुलपरिधिसूत्रेण स्थूलता ज्ञेयेति। अत्रोत्तमाधममंडपेन व्यवस्था ज्ञेयेति मम प्रतिभाति।

(४१) गोविन्दार्चनचन्द्रिकायाम्—मंडपोपरि बध्नीयादतिश्वेतं वितानकम्। अलं कुर्यात्पुष्पमालादिभिरेनं तु वेष्टयेत्। अंशैः समुन्नतां वाऽपि तारतम्यं विलोक्य च। सामग्र्यादेः समावेशो यथा स्यादिति मण्डपः।

(४१) अलङ्कारणासम्भवे-पुष्पमालापल्लवैर्वा मण्डपालङ्कारोऽवश्यं सम्पादनीयः। रुद्रकल्पद्रुम्।

ग्रहपीठ तथा कुण्ड आदि का विविध प्रकार

सूर्यपीठ[1]–

(ग्रहों की आकृति बनाने का प्रकार)

एक अंगुल, सात यव और छः यूकाको प्रकालसे नापकर मध्यसे वृत्त बनावे तो द्वादशांगुलात्मक सूर्यका क्षेत्रफल होगा। १ अङ्गुल, ७ यव, ९ यूका और ४ लिक्षा का वृत्त बतावे। यह लघुपीठमाला का मत है।

---

(१) लघुपीठमालायम्—सूर्यस्यार्काङ्गुलं वृत्तमेकाद्रीषुचतुः कृतम्। तद् व्यासार्धं तेन सम्यक् जायते नेत्रसुन्दरम् ॥१। एक १ अद्रि ७ इषु ५ चतु ४ भिः क्रमेण अंगुल-लिक्षाभिर्व्यासादर्धम्। तद्द्विगुणो व्यासः ३।७। चान्द्रं सिद्धाङ्गुल वेदकोणं वेदाद्रिपक्षयुक् ॥२॥ वेद ४ आद्रि ७ पक्ष २ क्रमेणाङ्गुलादिभिः इदं कोटिमानं भुजमानं च। भौमस्याब्धिफलं त्र्यस्रं त्रिखाम्बुधिराद्दतम् ॥३॥ त्रि ३ ख० शून्य अम्बुधम ४ श्चत्वारोङ्गुलाद्याः, तै अ दतं भौमस्य चतुरङ्गलं फलं त्रिकोणं पीठं त्रिकोणे त्रयो भुजाः समप्रमाणाः। तत्राधस्तना भूमिः उपरितनौ भुजौ तन्मानं ३।०।४। चतुर्यवान्तरं वेदाङ्गुलं स्यात्त भु द्वयम् ऊर्ध्वाधस्तद्वयर्द्धिश्च प्रत्येकं स्याच्चतुर्यवा। भूमिः षड्य४वेदाभ्यां भुजाभ्मां षट्त्रिकोणकम् तद्युक्तं बाणसमयं बुधपीटं प्रचक्षते। ।४। तर्काङ्गुलं गुरोः पीठं दस्रानलभुजद्वयम् ॥५। दस्रौ द्वयङ्गुलौ द्वौ भुजौ अनलौ व्यङ्गुलौ द्वौ भुजौ कोटिसंज्ञतत्रैकभुजैककोट्यौर्घातः फलं षड ुल गुरुपीठम् ॥ शुक्रस्य पीठपञ्च स्रं कु न गेषु भिः व्यासेन वृत्ते पूर्वादिसमाज्याः पद मन्धगा। प्राञ्छते बाह्यतो वृत्ते नवाङ्गलफल मत न् ।६। वेदा ब्धि वेदा ब्धि भूमिधनुः पीटं शनेर्भ्रमात् मध्यस्थचतुरस्रस्य मानहीनात् षडङ्गुलम्। चतुरस्रे स्वपते चतुर्धनुः एकं धनुः फलं तत्र ग्राह्यं हात्वा धनुस्त्रिकम् ॥७॥

वेदाङ्गुलैर्वेदकोणे पूर्वतो रेखयोरिह तिर्यग् ह्यन्यम्भोधिवृद्धिरधो बाह्यध ानतः। वृत्तेर्द्धे राहुपीठं स्याच्छूर्पं सिद्धाङ्गुलं शुभम् ॥८॥ प्रथमत

चन्द्रपीठ–

चार अङ्गुल, सात यव और दो यूका का गज लेकर पूर्वकी तरफ एक लम्बी सीधी रेखा दे। उतनी ही दक्षिण दिशा की तरफ, उत्तर की तरफ तथा पश्चिम दिशा की तरफ देने से चतुरस्रपीठ बन जाता है।

एकं चतुरस्रं तत्र भुजमानं ४।०।०। तदेव कोटिमानं ४।०।०। यत्र पूर्वयो रेखयोः तिर्यग् दक्षिणोत्तर द्वि २ अग्नयः त्रयः अंभोधयः ४ दक्षिणे अर्धम् १।१।६। उत्तरे अर्धम्—१।१।६। अंगुलयवयूकानां वृद्धिः। अधो भूमेरर्धं कृत्वा वृत्तद्वयं कार्यम्। चोपरिभूमिः ६।३।४ अधोभूमिः ४।०।०। अधोवृत्तव्यासार्धम्–१।०।०। तद्द्विगुणो व्यासः २।०।०। पूर्वापरौ गतौ बाहू-कोटिरर्द्धाङ्गुला भवेत् ऊर्ध्वमेकाङ्गुलं हित्वा-हित्वा चाधः शरागुंलम्। चतुरेकाङ्गुलयवं लग्नास्यं व्यस्रभारभ केतोर्ध्वजाभं कुण्डं स्याद् गजा-गुङ्लमितं शुभम् ॥९॥ यावा भूमिः सप्तविंशाङ्गुलाब्धि यावावृत्तार्द्धा-वृत्ताऽन्यातियेः स्यात्। त्रयोविंशस्तत्र लम्बाङ्गुलश्च राहोः शूर्पे कुण्डमेत द्विचित्रम्॥ प्रकारान्तरपक्षः—सिद्धाऽङ्गुलो भवेल्लम्बः पश्चाद् भूमिर्नखाङ्गुला। पूर्वाऽविंशतिः प्रोक्ता शूर्पे स्यात् ऋजुकोणके॥ इत्यनेन पश्चाद् वृत्तं नास्तीति ध्वानितम्।

संग्रहाऽर्द्धे साधरामेण चापेन्तर्ज्याहः स्याद् वृत्तपादो दिगंकात्।
सूत्राद्वोद्वाद्बाह्यमौर्व्यर्हमेवं वृत्तं दद्याज्ज्यास्पृगेवं परार्द्धम्॥
इषुवेदमितेन दीर्घदोष्णा गजदोष्णा लघुतापि च त्रिषष्टिः।
जिनलम्बगणेन वार्द्धषट्त्रि भुप्रचार्घात्पूवदन्ति केतुकुण्डम्॥
एकेन युग्मत्रिभिरङ्गुलीभिः परेण धृत्या च मिलेन दोष्णा।
सुदीर्घवेदास्रमुशन्तिकुण्डं निगद्यतेऽथो द्विविधं शराभम्॥

नोट—देखिये-विशेष निर्णयसिन्धु-सटीक कृष्णंभट्टी पृ० १०९१ और लिखित ग्रहपीठमाला की टीका को।

रूपनारायण मत से—३ अङ्गुल, ७ यव, २ यूका और ४ लिक्षाका एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तके ठीक मध्यसे दक्षिणोत्तर ७ अङ्गुल, छः यव और ५ यूका की एक लम्बी रेखा दे। ऐसा करने से दो वृतार्धं होंगे। उसमें से पश्चिम हिस्सेके वृत्तार्धको मिटा देने से चौबीस अङ्गुलात्मक अर्धचन्द्र हो जायगा।

मगलपीठ—

तीन अङ्गुल और चार यूकाको गजसे नापकर उत्तर की तरफ एक सीधी रेखा दे। उस रेखाके अन्तिम सिरोंसे अर्थात् दोनों कोनें से अलग अलग एक एक टेढ़ी रेखा उतनी देनेसे मंगलपीठ बन जाता है या एक यूका, ५ यव और दो अङ्गुल लम्बी दक्षिणाग्र रेखा दे। (दक्षिणाग्र या उत्तराग्रकरे—यह संस्काररत्नमालाका मत है।

मंगलपीठ का दूसरा प्रकार—३ अंगुल ४ यव और छः यूका की एक लम्बी रेखा उत्तरदिशा की तरफ दे। तदनन्तर वायव्यकोणसे एक टेढ़ी रेखा २ अंगुल, ४ यव और छः यूका की ठीक दक्षिण दिशामें दे। वैसे ही ईशानकोणसे जो रेखा दे वह भी दक्षिण दिशावाली रेखा में मिलानेसे त्रिकोणपीठ बनेगा।

बुधपीठ—

मध्यसे चार यव छोड़कर एक रेखा दक्षिणसे उत्तरकी तरफ चार अंगुल की लम्बी सीधी दे। वैसे ही चार अंगुल की मध्यरेखासे ४ यव छोड़कर उत्तरसे दक्षिणकी तरफ दे। तदनन्तर उत्तरदिशा की तरफ वाली रेखा के अन्तिमसिरेसे दो यव पूर्व दिशाकी तरफ और दो यव पश्चिम दिशाकी तरफ बढ़ा दे। वैसे ही नीचे दक्षिणदिशाका दोनों रेखाओंको दक्षिणकी तरफ बढ़ा दे। फिर पूर्वदिशा में बढ़ी २ यव वाली रेखाके अन्तिम सिरेसे दो अंगुल छः यव की एक रेखा टेढ़ी दे जो उत्तरमें मिले। वैसे ही पश्चिमकी तरफसे रेखा दे। ऐसा करनेसे बुधपीठ बन जाता है।

रूपनारायण मत से—एक अंगुल, सात यव और छः यूका का एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्त के ठीक मध्य में एक लम्बी रेखा दक्षिणोत्तर दे। फिर उस आधे दो वृत्तों में से एक आधे वृत्तको मिटा देनेसे षडङ्गुलात्मक बुधपीठ बन जाता है।

गुरुपीठ–

दो अंगुल चार यव और दो यूकाका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तमें चार अंगुल, चार यूका तथा दो लिक्षाका दूसरा वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तमें बराबर-बराबर के सोलह चिह्न कर विदिशाके पाँचवे चिह्नसे प्रारंभकर आठ पत्र बनाने से नव अंगुलात्मक पद्माकार आकृति वाला गुरुपीठ बन जाता है।

रूपनारायणमतसे—मध्य से दो अंगुल की दक्षिणदिशाकी तरह एक सीधी रेखा करे तदनन्तर पूर्व और पश्चिम की तरफ तीन-तीन अंगुलकी सीधी रेखा दे। फिर उत्तरदिशा की तरफ दो अंगुल की रेखा दे। ऐसा करनेसे दीर्घ चतुरस्र गुरुपीठ बन जाता है।

शुक्रपीठ–

प्रकारान्तर—एक अंगुल, सात यव और पाँच यूका का एक वृत्त बनाकर उस वृत्तमें पूर्वदिशासे दो अंगुल, दो यव और तीन यूका पर चिह्न करनेसे पंचकोणात्मक शुक्रपीठ बन जाता है।

रूपनारायणमतसे—तीन अंगुल, एक यव, दो यूका और चार लिक्षा को प्रकार से पूर्वदिशा, पश्चिम और उत्तरदिशासे नाप कर बनानेसे चतुष्कोण (चारकोनवाला) शुक्रपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तर—छः यूका छः यव और दो अंगुलके प्रकालसे नापकर एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस वृत्तके पूर्वदिशासे तीन अंगुल २ यव और छः यूका पर एक चिह्न करे। अर्थात्—कुल ५ चिह्न करे। फिर पी चिह्न से एक चिह्न छोड़कर तीसरे चिह्न पर जो रेखा दी

जायगी उस रेखा का नाप २ यूका, तीन यव और ५ अंगुल परिमित होगा। उसे बाहू कहते हैं। इसी तरह की ४ रेखा (बाहु) और दे। तदनन्तर कोणोंको छोड़कर बाहुवों और वृत्तको मिटानेसे पंचकोणात्मक शुक्रपीठ बन जायगा।

प्रकारान्तर पक्षसे—एक अंगुल ७ यव और पाँच यूकाका एक वृत्त बनाकर उस वृत्तसे बराबर के पांचभाग करने से शुक्रपीठ बन जाता है। यह पक्ष लघुपीठमालाका है।

शनिपीठ–

चार अंगुल, चार यव, चार यूका और चार लिक्षाका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके ठीक मध्यसे एक जीवा अर्थात् लम्बी रेखा छः अंगुल, तीन यव और ५ यूका की (या ६। ६। ५) देने से धनुषाकार पीठ बन जाता।

अथवा—छः अंगुल ३ यव और ५ यूका की दक्षिणोत्तर एक जीवा-रेखा दे। तदन्नतर ७ अंगुल, १ यव और तीन यूका के नापकी रस्सी या प्रकाल द्वारा नापनेसे धनुषाकार शनिपीठ हो जाता है। या—७।१।३। की दक्षिणोत्तररेखा दे। तदनन्तर ६।३।५ की देने से धनुषाकार शनि-पीठ बन जाता है।

अथवा—छः यूका ५ यव और दो अंगुल का वृत्त बनाकर वृत्त के ठीक मध्यसे छः यूका ५ यव और तीन अंगुल की एक लम्बी रेखा देनेसे शनिपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तर पक्षसे—२ अंगुल, ५ यव, ४ यूका और ४ बालाग्रका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्तके भीतर ठीक मध्यमें—३ अंगुल, ६ यव और ४ यूका के परिमाणसे ज्या देनेसे शनिपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तरपक्षसे—एक वृत्त ४ अंगुल, ४ यूका और ४ लिक्षाका बनाकर उस वृत्तमें एक चतुरस्र बनावे। (उस चतुरस्र की भुजा ६।३।५

होगी और कोटी भी ६।३।५ होगी। अर्थात्—बराबर का चतुरस्र बनेगा)। तदनन्तर वृत्त में जो चतुरस्र बना है। उस चतुरस्रसे बाहर और वृत्तके भीतर पूर्वदिशा, दक्षिणदिशा और उत्तरदिशामें जो जगह निकलती है उन जगहों को (अर्थात्—वृत्तके सहित जगहोंको चतुरस्र की तीन रेखाओंको मिटानेके धनुषाकार पीठ बन जायगा।

(शनि पीठ)

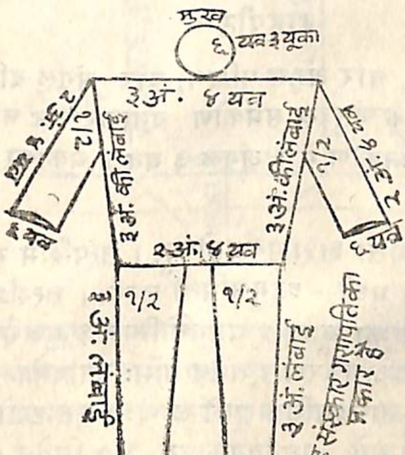

अथवा—२ अंगुल की भुजा और तीन अंगुल की कोटी बना कर शनिपीठ बन सकता है। यह लघुपीठमाला का मत है।

५

¹प्रकारान्तर–(१, मुख का व्यास छः यव तीन यूका होगा। अर्थात् छः यव और तीन यूका का एक गोलाकार वृत्त बनावे। उसी में आँख, कान आदि बनावे। (२) तदनन्तर दक्षिणोत्तर लम्बी रेखा तीन अंगुल और चार यव की करे। उसीको पूर्वका भू कहते हैं। (३) फिर मध्य की लम्बाई तीन अंगुल की होती हुई अन्त में सकरी होगी। (४) कन्धे की चौड़ाई एक अंगुल और दो यव की होगी। (५) हाथ की लम्बाई सवा दो अंगुलकी होगी। (६) कटीभागकी लम्बाई दक्षिणोत्तर दो अगुल चार यवकी होगी। ७) जांघकी एक अंगुल दो यवकी होगी। (८) चरणकी लम्बाई तीन अंगुल की होगी। (९) चरणका भाग ६ यव का होगा।

राहुपीठ–

चार अंगुल पूर्व, चार अंगुल पश्चिम, चार अंगुल दक्षिण और चार अंगुल उत्तर रेखा एक चतुरस्र समकोण बनाकर उस चतुरस्र के बाहर ईशानकोण और अग्निकोण में २ अंगुल ३ यव ४ यूकाका आधा १।१।५।

---

१. सार्धत्र्यङ्गुलमिता ३।४। पूर्वभागे भूः। तत्पश्चिमे भागे सार्धाङ्गुलद्वयमित २।४ मुखम्। मध्ये– त्र्यङ्गुलमितो लम्बः। तत्पश्चिमभागे चरणौ कार्यौ। सपादमेकाङ्गुला भूः १।२ षड्यवोन्मितं ६ मुखम्। त्र्यङ्गुलमितो लम्बः ३। एतादृशो दक्षिणचरणः। तथैव वामः सपादमेकाङ्गुला १।२ भूः। षड्यवोन्मितं मुखम्, सार्धद्वयमिताङ्गुलो लम्बः। एतादृशो दक्षिणहस्तः। तथैव वामः। तत्पूर्वभागे षड्यवयूकात्रय ६।३ मितेन। कर्कटेन वृत्तं तच्छिरः। एवं कृते सति द्वाविंशत्यङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं २२ नराकृतिः शनिमण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) उदरक्षेत्रफल ९ अंगुल। (ख) मुख का क्षेत्रफल २ (ग) चरण का क्षेत्रफल ६ अंगुल। (घ हाथ का क्षेत्रफल ५ अङ्गुल। कुल क्षेत्रफल जोड में २२ होगा।

दक्षिण दिशाकी तरफ और १।१।६। उत्तर दिशा की तरफ बढ़ा दे। तदनन्तर बढ़े हुए भागोंसे क्रमसे एक एक टेढ़ी रेखा वहाँसे नैर्ऋत्यकोणमें और एक टेढ़ी रेखा वायव्यकोणमें बढ़ा दे। फिर उस चतुरस्र का नीचे की पश्चिम की) तरफ दो भाग कर (अर्थात् दो दो अंगुल पर मध्यकर)

(राहु पीठ)

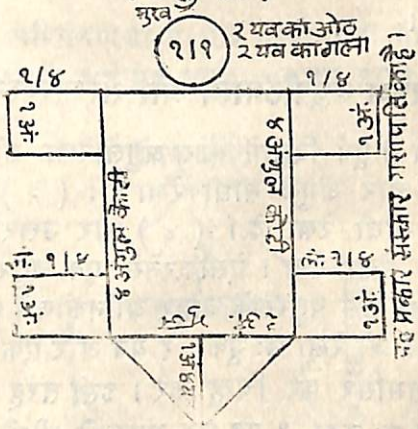

उनमें दो वृत्तार्धं अलग २ बनावे। वृत्तका व्यासार्धं १।०।० होगा अलग अलग, अर्थात्-प्रथम भाग में एक वृत्तार्धं दूसरे भाग में दूसरा वृत्तार्धं बनाकर भीतर का चतुरस्र मिटादेनेसे शूर्पाकार पीठ होता है।

[1]प्रकारान्तर पक्षसे—(१) मुख एक अंगुल यवाधिक व्यासार्धं से

---

१. तत्र उदरे अङ्गुलत्रयमित भुजः। अङ्गुल चतुष्टमिता कोटिः। उर्ध्व-भागो पार्श्वयोः सार्द्धाङ्गुलदीर्घौ एकाङ्गुलविस्तृतौ द्वौ करौ। तावन्मितावधो भागे पार्श्वयोर्द्वौ चरणौ। यवाधिकैकाङ्गुलव्यासार्धेन कृतं मण्डलं मुखम्। मुखोदरयोर्मध्ये यवद्वयमितश्चतुरस्रो गलः। मुखादग्रे यवद्वयेनोष्ठौ पुच्छे

एक वृत्त बनावे। मुख और उदर मध्यमें दो यवका एक चतुरस्र चारों तरफ से गला होगा। मुखके आगे दो यवका ओष्ठ रहेगा। (२) तीन अङ्गुल की भुजा रहेगी। (३) हाथ की चौड़ाई एक अङ्गुल चार यवकी होगी। (४) कोटी चार अङ्गुल की होगी। (५) नीचे पूछ ठीक मध्य में (अर्थात्-पुच्छे त्रिभुजे अङ्गुलत्रयमिता भूमिः) त्रिभुज करने पर ठीक मध्य से एक लम्बी रेखा उत्तरदिशा की तरफ जो होगी वह तीन अङ्गुल की होगी।

प्रकारान्तरपक्ष लघुपीठमाला और संस्काररत्नमालासे-

(१) मध्य से पूर्व दिशामें चार अंगुल रेखा सीधी दे। (२) दक्षिणदिशासे--चार अंगुल सीधी रेखा दे। (३) पश्चिमदिशामें चार अंगुलकी सीधी रेखा दे। (४) और उत्तरदिशा में—चार अंगुलकी सीधी रेखा देना। ऐसाकरनेसे एक चतुरस्र तय्यार हो जायगा। तदनन्तर उस चतुरस्रके बाहर अग्निकोणमें दक्षिणकी तरफ एक सीधी रेखा दे जो रेखा छः यूका, १ यव और एक अंगुल की हो। उस रेखाके अन्तिमसिरे पर चिन्ह करे। इसी तरह उत्तर की तरह (ईशानकोणमें) छः यूका, १ यव एक अंगुलकी सीधी रेखा बढ़ा दे। फिर नैर्ऋत्यकोणसे एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा (अग्निकोण) में बढ़े हुए भागके अन्तिमचिन्ह पर मिले। वैसे ही-वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो उत्तरदिशा में (ईशानकोण) में बढ़े हुए भाग के अन्तिमसिरे में मिले।

त्रिभुजे अङ्गुलत्रयमिता भूमिः। सार्धाङ्गुलो लम्बः। एवं कृते पञ्चविंशत्यङ्गुलक्षेत्रफलात्मकं मकराकृति राहुमण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) भुज और कोटी का क्षेत्रफल १२ अङ्गुल। (ख) मुख का क्षेत्रफल ४ अङ्गुल। (ग) ओष्ठ और गले का-एक अङ्गुल। (घ) हाथ और चरण का क्षेत्रफल ६ अङ्गुल। कुल जोड़ २५ क्षेत्रफल होगा।

तदनन्तर—उस चतुरस्र के नीचे के हिस्सेमें (अर्थात्-वायव्य और नैर्ऋत्यवाले में) अर्थात् पश्चिमदिशामें उस चतुरस्रका दो दो अंगुल का मध्यसे एक अंगुल के व्यासार्ध पर चिह्न करे। ऐसा करने पर प्रकाल द्वारा अलग-अलग दो वृत्त बनावे। फिर चतुरस्र के भीतर का अर्धवृत्त और चतुरस्र मिटानेसे शूर्पाकारका बनेगा।

केतुपीठ—

पूर्वदिशासे पश्चिमदिशा में एक लम्बी रेखा आठ अंगुलकी दे। तदनन्तर पूर्वदिशा से चार यव अर्थात्—आधा अंगुल हटाकर दूसरी

(केतुपीठ -)

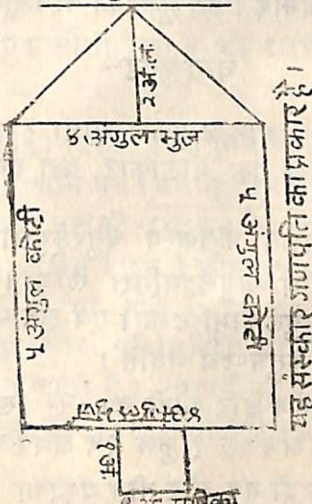

लंबीरेखा उस रेखासे हटाकर दक्षिण दिशाकी तरफ दे। फिर पश्चिम दिशासे दक्षिणवाली रेखासे अधोभागसे पाँच अंगुल पर चिह्न करे और पूर्वदिशासे अर्थात् —ऊपर से एक अंगुल छोड़कर उसी रेखा पर

चिह्न करे। एक अंगुलसे एक सीधी रेखा चार अंगुल, एक यव की दक्षिण तरफ वैसे ही पाँचवें भागसे दूसरी रेखा टेढ़ी दे जो ऊपर वाली रेखा ४ अंगुल और १ यव में मिले। ऐसा करनेसे मध्यवाली रेखा होगी। इससे केतुपीठ बन जाता है।

प्रकारान्तर पक्षसे—(१) कोटी पाँच अंगुल लंबी। (२) वज्र का त्रिकोणलंबाई दो अंगुल (३) भुजा चार अंगुल की। (४) सम चतुरस्र एक अंगुल की मध्य में मुष्टिका।

सूर्यकुण्ड-

२७ अंगुल ६: यूकाके आधेको प्रकाल द्वारा नापकर मध्य विन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे। इस कुण्डका नाम सूर्यकुण्ड होता है।

[1]चन्द्र कुण्ड-

३३ अंगुल ७ यव और ४ यूका आधा १६।६।५। को प्रकालसे नापकर मध्य बिन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर उस

---

(१) तत्र खड्गाकृतौ फलकस्य चतुरङ्गुलो भुजः। पञ्चाङ्गुला कोटिः। खड्गाग्रत्रिकोणे अंगुलद्वयमित्त लम्बः। चतुरङ्गुला भूमिः। उपरि समचतुरस्रा अंगुलैकामुष्टिका। एवं कृते पञ्चविंशत्यङ्गुलक्षेत्र-फलात्मकं खड्गाकृति केतुमण्डलं भवति।

क्षेत्रफल—(क) भुज और कोटी का २० (ख) त्रिभुज का क्षेत्र-फल ४ (ग) मुष्टिका क्षेत्रफल १ कुल २५ क्षेत्रफल हुआ।

(१) ३८ अंगुल दो यव और तीन यूकाका आधा कर प्रकालसे नापकर मध्य बिन्दुमें एक गोलाकार वृत्त करे। उस वृत्तमें दिक् साधनार्थ पूर्वदिशा (मुख) से एक लंबी लकीर दे जो पश्चिम (पुच्छ) दिशामें मिले। तदनन्तर उत्तर दिशा (वामपार्श्व)से एक लकीर लंबी दे जो दक्षिणदिशा (दक्षपार्श्व) में जाकर मिले। फिर दक्षिणसे उत्तर-

वृत्तसे (क) ईशानकोण से एक सीधी रेखा दे जो अग्निकोणमें मिले। (ख) अग्निकोणसे एक सीधी रेखा दे जो नैर्ऋत्यकोणमें मिले। (ग) नैर्ऋत्यकोणसे एक सीधी रेखा दे जो वायव्यकोणमें मिले। (घ) वायव्यकोणसे एक सीधी रेखा दे जो ईशानकोणमें मिले। ऐसा करने से वृत्तके भीतर एक चतुरस्र बनेगा उस चतुरस्र को चन्द्रकुण्डसे कहा जाता है।

मंगलकुण्ड—

४२ अंगुल तथा १ यव का आधा कर प्रकाल द्वारा मध्य बिन्दु से एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर पूर्व दिशा (मुख) से एक सीधी रेखा दे जो पश्चिम दिशा (पुच्छ) में मिले। फिर दक्षिण-दिशा (दक्षपार्श्व) एक सीधी रेखा दे जो उत्तरदिशा (वालपार्श्व)

वाली जो रेखा (लकीर) दिक्साधनके लिये दी है उस लकीरका चार भाग कर उसके चतुर्थ भाग पर (अर्थात् तीसरे चिह्न पर) प्रकाल को रख उत्तरदिशासे दूसरा वृत्त की तरह बनावे। (यह ध्यान रखे की दूसरे वृत्त की रेखा पुच्छ (पश्चिम दिशा) और मुख (पूर्वदिशा की रेखाको स्पर्श करती आ रही है या नहीं) तदनन्तर तीसरे चिह्न से एक सीधी रेखा पूर्वदिशा और पश्चिमदिशा की तरफ देनेसे अर्धचन्द्र (चन्द्रसा) कुण्ड बन जाता है। तात्पर्य यह है कि—यहाँ पर जो दो वृत्त बनाये गये हैं उस दूसरे वृत्त से ही अर्धचन्द्र बनेगा। प्रथम वृत्तके मध्यसे नही बनेगा।

अथवा—एक कुण्डपक्ष में वृत्तका दिक्साधन कर उस वृत्त में दो चिह्न और करनेसे चार भाग होंगे। उसके तीसरे चिह्नसे पूर्वदिशाकी तरफ दूसरा वृत्त बनावे। तदनन्तर तीसरे चिह्न से ही दक्षिणोत्तर एक सीधी रेखादेनेसे अर्धचन्द्रकुण्ड बन जाता है।

में मिले। वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिणदिशा में मिले। ईशानकोण से एक टेढ़ी रेखा दे दक्षिणदिशा में मिले। ऐसा करने से त्रिकोणकुण्ड बन जाता है।

अथवा—नैर्ऋत्यकोण से एक सीधी रेखा दे जो वायव्यकोण में मिले। नैर्ऋत्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे जो उत्तरदिशा में मिले। वायव्यकोण से एक टेढ़ी रेखा दे, जो उत्तरदिशामें मिले। ऐसा करनेसे त्रिकोणकुण्ड बन जाता है।

बुधकुण्ड का प्रथमप्रकार—

मध्य बिन्दु से चार अंगुल हटाकर दक्षिणदिशा की तरफ एक रेखा सीधी ३६ अंगुल की दे। (अर्थात् मध्य बिन्दु से चार अंगुल इधर और १८ अंगुल उधर रेखा देने से ३६ अंगुल होगा) वैसे ही मध्य बिन्दु से चार अंगुल हटाकर उत्तरदिशा की तरफ एक रेखा सीधी दे जो ३६ अंगुल की होगी।

तदनन्तर—दोनों रेखाओं की समाप्ति पर उत्तरदिशा की और एक रेखा पूर्वसे पश्चिमदिशाकी तरफ दे जिसका नाप २४ अंगुल होगा।

(तात्पर्य यह है कि २४ अंगुल की जो रेखा दी जायगी उस रेखा का आधा १२ अंगुल होगा। उस बाहर अंगुल के मध्य बिन्दु वाली रेखा के अन्तिम सिरे पर रखने पर पूर्वदिशा की तरफ १२ अंगुल रेखा का नाप होगा और पश्चिमदिशा की तरफ भी १२ अंगुल रेखा का नाप होगा। यो निश्चयात्मक हो जाने पर मध्य बिन्दु से अंगुल हटाकर दक्षिण दिशा की तरफ जो ३६ अंगुलात्मक रेखा दी है और ४ अंगुल हटाकर उत्तर दिशा की तरफ जो रेखा दी है उन रेखाओं के मध्य में चार २ अंगुल और आजायगा। ऐसी स्थिति में दोनों छोर में अलग अलग आठ अङ्गुल बचेगा।) इसी प्रकार अन्य प्रकारों में व्यवस्था समझ लेनी चाहिये) फिर मध्यबिन्दुमें एक सीधी

दे जो दोनों रेखाओंके बराबरके नापकी हो। इस तरह कुल लंबी ३६ अङ्गुलात्मक तीन रेखा हुई ऐसा पूर्ण ज्ञानहोनेपर मध्यवाली रेखा के अन्तिमसिरेसे एक रेखा सीधी उत्तर दिशाकी तरफ २४ अङ्गुलकी दे।

तदनन्तर—पूर्वदिशासे पश्चिमदिशावाली रेखा के दोनों कोनेसे एक एक टेढ़ी रेखा दे जो कि उत्तरदिशामें जाकर मिले ऐसा करनेसे बाण कुण्ड बन जाता है।

द्वितीयप्रकार—

मध्य विन्दुसे ५ अंगुल दक्षिण दिशाकी तरफ हटाकर एक सीधी रेखा दे जो रेखा ३६ अंगुलात्मक होगी। तद्वत् मध्यविन्दू से ५ अंगुल

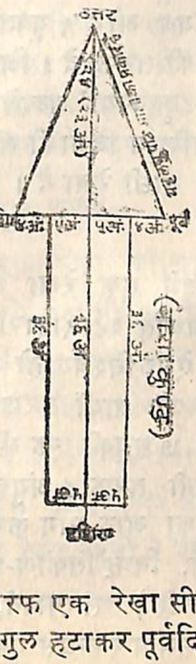

हटाकर उत्तरदिशाकी तरफ एक रेखा सीधी ३६ अंगुलात्मक दे। अर्थात्—मध्यविन्दूसे ५ अंगुल हटाकर पूर्वदिशाकी तरफ ३६ अंगुलकी

एक सीधी रेखा दे। तद्वत् मध्यबिन्दुसे पश्चिमदिशाकी तरफ ५ अंगुल हटाकर ३६ अंगुलकी एक रेखा सीधी दे। तदनन्तर—उत्तरदिशाकी तरफ मध्य विन्दुवाली रेखाको २३ अंगुल या २४ अंगुल एक सीधी रेखा उत्तर दिशाकी तरफ बढ़ा दे। फिर उत्तरदिशाकी तफर जहाँ ३६ अंगुलात्मक रेखायें समाप्त हो चुकी हैं वहाँसे पूर्वदिशासे पश्चिम दिशाकी तरफ १८ अङ्गुल की एक सीधी रेखा दे। फिर इस १८ अंगुलकी रेखा के दोनों छोर से एक एक टेढ़ी रेखा दे जो जो उत्तरदिशामें मिले। ऐसा करनेसे प्रकारान्तर बाणकुण्ड बनेगा।

तृतीयप्रकार कुण्डरत्नावलीका–

५८ अंगुल और ७ यूका के आधे को प्रकाल से नापकर मध्य विन्दु से ४ अंगुल, ५ यव और ५ यूका हटाकर एक सीधी रेखा दक्षिणोत्तर (पूर्व दिशाकी तरफ) दे। जिसकी लंबाई ३८।३।५।१२।४ अंगुल होगी। जिसे 'दण्डवृहज्ज्या' शब्दसे कहसकते हैं। तद्वत्—मध्य विन्दुसे दक्षिणोत्तर (पश्चिम दिशाकी तरफ) ५ अंगुल, ५ यव और ५ यूका हटाकर एक सीधी रेखा दे। जिसका नाम ३८।५।१२।४ अंगुल होता है।

तदनन्तर मध्यविन्दुमें एक रेखा दक्षिणोत्तरदे जो रेखा पूर्वरेखाओंके बराबर हो अर्थात् ३८।५।१।२।४ अंगुल की अर्थात् तीनों रेखायें बराबर की हुई ऐसा निश्चय हो जानेपर उत्तरदिशाकी तरफ मध्य रेखाकी समाप्ति पर बायीं तरफसे ८ अंगुल, ३ यव और ४ यूका की एक रेखा दे। ७'यवकी एक सीधी रेखा पूर्वसे पश्चिमकी तरफ दे। दूसरी दाहिनी तरफ ८ अंगुल ३ और ४ यूका की एक रेखा दे। (अर्थात्-वृत्तका आठ भाग कर पूर्व-मुख, अग्निकोण अंश (स्कन्ध) दक्षिणपार्श्व, निर्ऋतिकोण-श्रोणी (कटी) पश्चिम—पुच्छ, वायव्यश्रोणी (कटी) उत्तरपार्श्व, ईशानअंश (स्कधं) तरफ —मुख (पूर्वदिशा) के समीप स्कन्धसे एक सीघी रेखादे जो पुच्छके

समीप श्रेणी (कटि) में मिले। उस रेखा का मध्य और मध्यविन्दुसे जो रेखाकी समाप्ति हुई है–मध्य एक होगा। इसके मध्यसे पूर्वदिशा की तरफ ८ अंगुल ३ यव और ४ यूकापर एक चिह्न करे। वैसे ही मध्य से पश्चिमकी तरफ ८ अंगुल ३ यव और ४ यूका पर चिह्न करे) फिर फिर उत्तरदिशाकी तरफ पार्श्वका बायें का आधा और दाहिनेके आधे पर एक रेखा दे। तद्वत् दक्षिणकी तरफ दे। फिर मध्य विन्दु-वाली रेखा के अन्तिमसिरे से एक सीधी रेखा जो उत्तर दिशाकी तरफ जाय। जिसका नाम १५।७।४।७।२।४ है। यदि मध्यशर २।१। ६।६।५७ को १५।७।४।७।२ से घटा दे तो उपरका हिस्सा रेखा का नाप हुआ। तदनन्तर दाहिनी तरफ (दक्षिण तरफ) पार्श्वका चार भाग करे। आदिके दो भाग छोड़कर मध्यके भाग अन्तिम सिरेसे दक्षिणदिवाली रेखाके अन्तिमसिरे से एक टेढ़ी रेखा जो मध्य के अष्टास्त्रिज्याके भीतर मध्यवाली रेखाके कोनेमें मिले। वैसे ही उत्तर वाली रेखा के अन्तिम सिरे से एक टेढ़ी रेखा दे। फिर मध्यकी बची रेखा मिटा दे और वृतादि मिटानेसे बाणकुण्ड बनेगा।

गुरु कुण्ड–

३६ अंगुल, ३ यव और ७ यूका का आधा (१८।१।७।४) कर प्रकालले नापकर मध्य विन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर वृत्त के बराबर के चौबीस चिह्न कर ७ चिह्नको छोड़कर एक रेखा सीधी (पूर्वदिशाकी तरफ) दक्षिणोत्तर वृत्त के भीतर दे इस रेखा वृत्तके भीतर दे जिसका नाप ३१।४।६।२।५। होगा। सात रेखा छोड़ कर (पश्चिमदिशाकी तरफ) दक्षिणोत्तर दे। फिर दोनों कोनोंको (जिसके मध्यमें तीन तीन रेखा रहेगी) रेखा द्वारा मिला दे। इन दो रेखाओं का नाप अलग अलग १७ अंगुल, १ यव, ७ यूका और ४ लिक्षा होता है।

(गुरु कुण्ड)

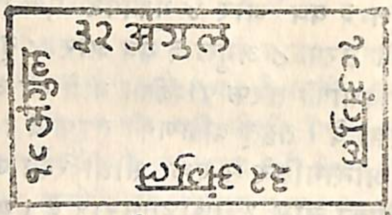

यहलघुपीठ मालाका प्रकार है

तात्पर्य यह है कि—दक्षिणदिशा के समीप दक्षपार्श्वसे एक सीधी रेखादे जो उत्तरदिशाके समीप वामाँश में मिले। जिसका नाप (३१।४।६।२।५ होगा। फिर दक्षश्रोणीसे एकरेखा सीधी देंगे जो वामपार्श्वमें मिलेगी। जिस रेखाका नाप (३१।४।६।२।५) होगा। जिसको 'वृहज्जा' से पुकारा जाता है। तदनन्तर वामपार्श्व एक सीधी रेखा देंगे, जो वामांशमें मिलेगी जिसका नाम १८।१।७।४ होगा जिसको 'लघुज्या' से कहा जाता है। फिर दक्षश्रोणीसे एक सीधी रेखा दें, जो दक्षपार्श्व में मिलेगी इस रेखाका नाम १८।१।८४ है। जिसे लोग 'लघुज्या' कहते हैं। ऐसा करनेसे आयत गुरुकुण्ड बन जाता है।

द्वितीय प्रकार—

जो रेखा ऊपर ३१।४।६।२।५।की है। वह इस दूसरे प्रकार में ३२ अंगुलकी रहेगी जिसे 'बृहज्ज्या' शब्द से कहा जाता है। दूसरी रेखा जो ऊपर १८।१।७।४।की कही है। वह यहाँ दूसरे प्रकार में १८ अंगुल की कही है। जिसे 'लघुज्या' शब्द से कह सकते हैं।

शुक्रकुण्ड–

३१ अंगुल और १ यवके आधे व्यासको प्रकालसे नापकर एक वृत्त गोलाकार बनाकर उस वृत्तके बराबर पाँच भाग कर (क) पूर्वदिशासे एक टेढ़ी रेखा दक्षपार्श्व में मिला दे। (ख) दक्षपार्श्वसे एक टेढ़ी रेखा नैर्ऋत्यकोण में मिला दे। (ग) नैर्ऋत्यकोण से एक सीधी रेखा वामश्रोणी में मिला दे। (घ) वामश्रोणीसे एक टेढ़ी वामांशमें मिला दे। (ङ) वामांशसे एक टेढ़ी रेखा पूर्वदिशावाली रेखा में मिला दे। ऐसा करने से 'पञ्चास कुण्ड' बन जाता है।

द्वितीयप्रकार–

एक चतुरस्र २४ अंगुल का बनाकर उस चतुरस्र के बाहर चारों दिशाओं में पूर्व, पच्छिम, दक्षिण, उत्तर २४ अंगुलका सातवां भाग प्रत्येक दिशा में बढ़ाकर चतुरस्रको मध्य और चतुरस्रके बाहरके बढ़े हुए हिस्सेमें प्रकाल रख एक वृत्त गोलाकार बनाकर पूर्वोक्त व्यवस्था से ५ रेखा करने से पञ्चास्र कुण्ड बन जाता है।

शनिकुण्ड–

मध्य केन्द्र से २९।२।५ के आधे से (१४।५।२।) से एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस वृत्त के दक्षपार्श्वको केन्द्र मानकर दक्षिणदिशा को केन्द्र मानकर प्रथम वृत्तके आधेसे प्रकाल घुमानेसे अर्थात् प्रथमवृत्तके मध्यमें पिबसिन रखे दक्षिण दिशामें प्रकालका शंकु रखकर घुमा देनेसे दूसरा वृत्त बनेगा। तात्पर्य यह है कि दूसरे वृत्तके आधे में चला जायगा। फिर उन दोनों वृत्तोंमें ज्या दक्षिणोत्तर मध्य से दे। तदनन्तर दोनों वृत्तोंके बाहर मध्य हिस्सेसे ४ अंगुल, ७ यव और १ यूका बायीं तरफ और ४ अंगुल, ७ यव और १ यूका दाहिनी तरफर बढ़ा दे। इस पूर्ण रेखाका नाप ५३।५।७ होगा और केवल दोनों तरफ का मिलाकर षष्ठांश ९। ६। १ होगा अर्थात्

५३।५।७। से ९।६।१ घटादेंगे तो भीतर वृत्तोंकी ज्याका नाप ४३।७।६ होगा। फिर बायें वृत्तके आठ भाग बराबर बराबर के करे। (१) पूर्वदिशाको मुख कहें। (२) अग्निकोणको ङ्गुश (स्कन्ध) कहे। (३) दक्षिणदिशाको पार्श्व कहें। (४)

(श्रानि कुण्ड)

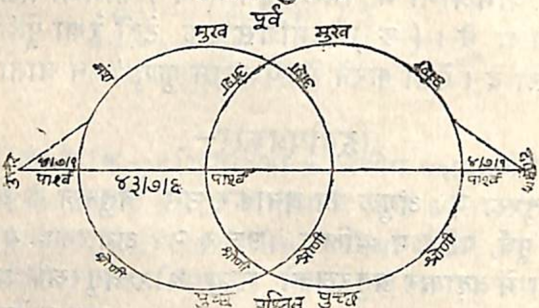

निर्ऋतिकोणको श्रोणी कहे। (५) पश्चिमदिशाको पुच्छ कहे। वायव्यकोणको श्रोणी (कटी) कहे। (६) उत्तरदिशाको पार्श्व कहे। ईशानको ङ्गुश (स्कन्ध) कहे। इसी प्रकार दाहिने वृत्त में भी आठ भाग की कल्पना करे।

तदनन्तर—बायें पार्श्वमें बढ़ो रेखा (४।७।१) के अन्तिमसिरेसे एक टेढ़ी रेखा दे जो अंश और पार्श्वका जो मध्य है उसमें मिले। वैसे ही दाहिने तरफ रेखा (५।७।१) के अन्तिमसिरेसे अंश और पार्श्वका जो मध्य रेखामें मिला दे। फिर कारीगरसे कहकर कुण्ड रत्नावली के नकशे (सिद्धरूप को) को दिखाकर उपरी भाग में अर्थात् पार्श्व और ङ्गुश के मध्य में जो रेखा टेढ़ी दी है, वहाँ से धनुष्य के रूपको कुछ उठा दे और दूसरी तरफ वृत्त के ऊपरी भाग से स्कन्ध और पार्श्वके मध्यवाली टेढ़ी रेखा से धनुषका आकार

बनावे। फिर सब नीचे के भागकों मिटादेनेसे धनुषाकार कुण्ड बन जाता है। यही पक्ष उत्तम है।

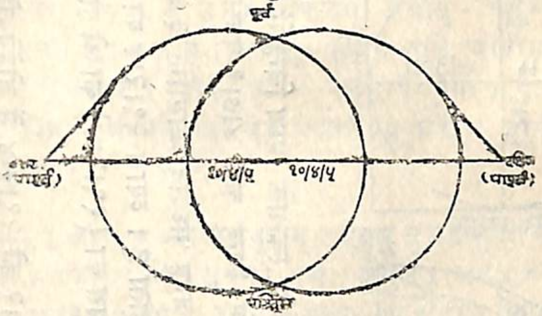

मध्यकेन्द्रसे—दक्षिणदिशाको तरफ १०।४।५। अंगुल हटाकर एक चिह्न करे। इस चिह्न से एक वृत्त १४।५।२ का बनावे। तदनन्तर मध्यकेन्द्रसे दक्षिणदिशाकी तरफ १०।४।५ अंगुल हटाकर १४।५।२ का वृत्त बनावे। तदनन्तर वृत्तके बराबर बराबरके आठ भाग करे। (१) पूर्वदिशा– मुख होगा (२) अग्निकोण ङ्गुश (स्कन्ध) होगा (३) दक्षिणदिशा पार्श्व (४) निर्ऋतिकोण श्रोणी (५) पश्चिम दिशा पुच्छ (६) वायव्यकोण—श्रोणी कटी (७) उत्तर-दिशा--पार्श्व (८) ईशानकोण--ङ्गुश (स्कन्ध) होगा। इसी प्रकार वायें वृत्त में भी कल्पना करे। तदनन्तर वृत्त में भी कल्पना करे। तदनन्तर वृत्तके भीतर ठीक मध्यसे एक रेखा दक्षिणोत्तर लंबी सीधी दे। फिर वृत्तके बाई तरफ (दक्षिणोत्तर लंबी रेखा के अन्तिम सिरे से) दक्षिण दिशासे एक रेखा लंबी--४।७।१। बढ़ा दे। वैसे ही उत्तर दिशा से एक लंबी रेखा ४।७।१। बड़ा दे। तदनन्तर–दक्षिणदिशामें पार्श्व और स्कन्ध के मध्य में चिह्न कर ४।७।१। बाली

(शनि कुण्ड)

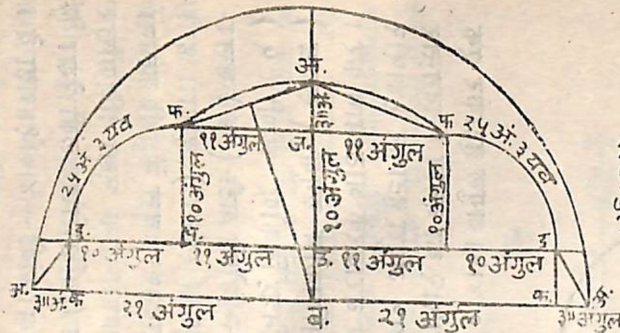

यह लघुपीठ माला का प्रकार है।

(आगन्तुक चतुरस्र प्रदर्शनाय क्षेत्रम्)

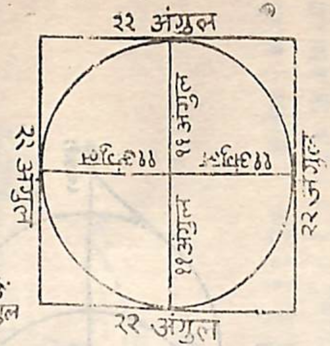

रेखाके अन्तिमसिरेसे एक रेखा टेढ़ी ले जाकर पार्श्व और स्कन्धके मध्य चिन्ह में मिला दे। वैसे ही उत्तर दिशा में पार्श्व और स्कन्धके मध्यमें चिन्ह कर ४।७।१ वाली—रेखाके

नोट—कुण्डरत्नावाली में जो १ श्लोक है उसकी जगह 'मध्याद् व्यासाग्नि ३ भागे स्वरविलवविहीने कृते' ऐसा बढ़ा जाय तो अच्छा मालुम होता है। व्यास २९।२।४ का तृतीयांश निकाल कर ९।६।१ को द्वादशांश–अर्थात् स्वमति व्यास का (२९।२।४) का जो द्वादशांश-हो उसको तृतीयांश मे घटा दे को ७।२।५ होगा।

[(२) २९।२।४ का आधा १४।५।२ हुआ १४।५।२ को २९।२।४ में जोड़ेगे तो ४३।७।६ होगा। अर्थात् - साद्र्धव्यासार्ध होगा। उसमें षष्ठांश जोड़ेगे तो ९।६।१ को ५३।५।७ होगा। इतनी बढ़ी वृत्तों में और बाहर ज्या होगी। २९।२।४ का चतुर्थांश ७।२।५ होगा।]

नोट—विशेष निर्णय सिन्धु में देखें।

अ ब=४२।। अंगुल, अ क = ३ ।। अंगुल, क ब = २१ अंगुल, ◻ क इ उ ब=संग्राहार्धफलम् =७३ अंगुल ४ यव, इ प क=वृत्तपाद-फलम्=७८।४, प च ज त्रिभुजफलम् अ क इ त्रिभुज फल=कोणांशफलम् $\frac{७७}{४}=\frac{४९}{२}=\frac{१५}{२}+४९=\frac{२०३}{२}$ =अंगुल २५। यव ३। ज्यास्पृक् सूत्रान्तश्चतुरस्रम्=प फ ज उ ◻ तत्फलम् अर्थात्- चतुरस्रफलम्= ११०। यह आधे का फल है। अर्थात्–मध्यसे साढ़े चौबीस अंगुल का एक आधा चाप बनावे। इसका फल—२८७।३ होगा। दोनों चापका फल ५७६ होगा। मध्यसे जो एक रेखा पूर्व पश्चिम होगी वह १७ अंगुल की होगी।

अर्थात्—प और उ व्यासार्धवृत्तम्। एतत् वृतबहिर्गतं यद् चतुरस्रं तदेवागन्तुकं समचतुरस्रम्। तत्रैको भुजः अंगुल। ४८४=२२×२२ =आगन्तुक चतुरस्रफलम्। ३८०=वृत्तफलम्। यस्य व्यासः=२२। १०४।

राहुकुण्ड का प्रथमप्रकार-

३८ अंगुल ३ यव और २ यूकाके आधेको (१९। १। ५) प्रकाल से नापकर मध्य विन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर (१) मुखसे एकसीधी रेखा दे जो वामश्रोणीमें मिले। (२) दशांशसे एक सीधी रेखा दे जो पुच्छमें मिले। (३) वामांश से एक सीधी रेखा दे जो दक्षपार्श्वमें मिले। (४) वामपार्श्वसे एक सीधी रेखा दे जो दक्ष-श्रोणीमें मिले। ऐसा करने से मध्यमें एक चतुरस्र बन जाता है। फिर वामपार्श्व से एक टेढ़ी रेखा दे जो वामांशसे मिले। अर्थात् वामांश-वाली रेखा और मुखवाली रेखा के सन्धिमें जाकर मिले। वैसे ही दक्षश्रोणीसे एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षपार्श्वमें मिले। अर्थात्-पुच्छवाली रेखा और दक्षपार्श्ववाली सन्धिमें जाकर मिले। फिर—जो रेखा वामांशसे दक्षपार्श्वकोणमें गई है उस रेखा में अर्थात्—वामांश और

मुख की सन्धि से और दक्षपार्श्व पुच्छवाली रेखाकी सन्धि के बीचके

(शूर्पकुण्ड)

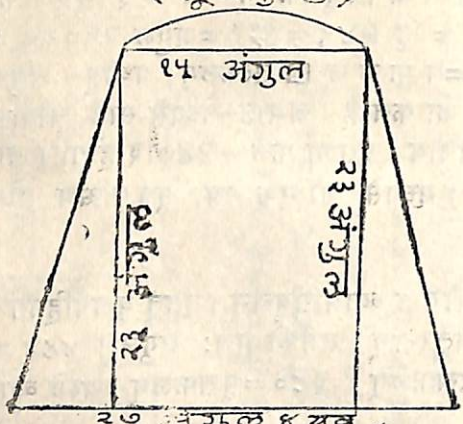

यह लघुपीठ माला का प्रकार है।

(शूर्पकुण्ड)

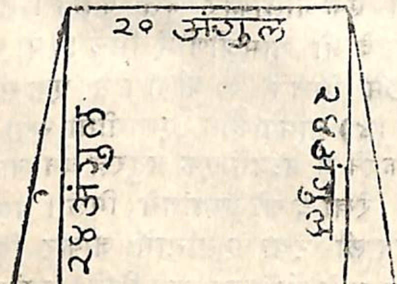

यह लघुपीठ माला का प्रकार है।

हिस्सेका मध्यसाधन कर दो वृत्तार्ध बनावे। अर्थात्—आधे वृत्त बनाने से शूर्पकुण्ड बन जाता है।

द्वितीय प्रकार – ३९ अंगुल ६ यूकाका आधा नापकर मध्य बिन्दुसे एक गोलाकार वृत्त बनावे। तदनन्तर पूर्ववत् सब क्रिया करे। केवल वामांशवाली रेखामें जो दो वृत्तार्ध (शूर्पके आकारकी तरह बने हैं) वे इस दूसरे प्रकार में न बनकर केवल उतनी जमीनका मध्य साधनकर मध्यमें प्रकालरख ईशानवाली सन्धिसे घुमाकर दूसरी सन्धि में मिला देनेसे शूर्पकुण्ड बन जाता है।

---

(१) संग्राहोर्ध्वे सार्धरामेण चापेन्तर्जोर्हः स्याद् वृत्तपादोदिकङ्कात्। सूत्राद्रौद्राद्बाह्यमौर्व्यर्हमेवं वृत्तं दद्याज्ज्यास्पृगेवं परार्धम् ॥ चापे यदर्ष तत्र सार्धत्र्यङ्गुलेन संग्राहः भागः कर्तव्यः। ततः दशाङ्गुलात्सूत्रा-दन्तर्ज्यार्हः वृत्तपादः कर्तव्यः। तथा तत्र एकादशाङ्गुलेन सूत्रेण चापज्यास्पृक् बाह्यज्यार्हं वृत्तं दद्यात्। तथा च व्यासंग्राहचिन्हयोरन्तरं २१ एकविंशत्यङ्गुलं भवति। एवमेव द्वितीयार्धं भवति। अन्त-र्बहिर्ज्यार्हत्वं तदसत्वार्थम्। अत्र फलं संग्राहार्धफलम्—७३।४। वृत्त-पादफलम्-७८।४। ज्यास्पृक् सूत्रान्तश्चतुरस्रफलम् तत्र एका कोटिः ११ परा कोटिः १०कोणांशफलम् २६ तत्रागन्तुके चतुरस्रे अंशत्रयं ७८ त्वक् सूत्रान्तश्चतुरस्रफलम् तत्र एका कोटिः १० कोणांशफलम् २६ तत्रागन्तुके चतुरस्रे अंशत्रयं ७८ त्यक्त्वा शेषांशो ग्राह्यः २६। तथा च ७३।४। एवं ७८।४ एवं ७८।४ एवं ११० एकत्र २२८ एवं परार्धस्य २८८ मिलितम्—५७६।

नोट—जोड़ में २८८।७३।४, ७८।४, ११, २५।३, २८८। आता है। पाँच यव का अन्तर पड़ता है।

नोट—मुद्रित संस्काररत्नमाला, संस्कारगणपति, कुण्डरत्नावली, लिखित—ग्रहपीठमाला आदि भी देखिये।

राहुकुण्ड—तात्पर्य यह है-दक्षश्रोणीसे रेखाका नाप ७२ अंगुल ४ यव है। दक्षपार्श्व से वामांशकी रेखाका नाप १५ अंगुल है और चतुरस्रके भीतर वाली रेखा पुच्छ और मुखकी रेखाका नाप अलग अलग २३ अंगुल है। दक्षश्रोणी और वामपार्श्व वाली रेखा जो चतुरस्र के बाहर पड़ेगी वह अलग २६ अंगुल २ यव है, अर्थात् दोनों छोर दक्षश्रोणी और वामपार्श्व १२ अंगुल ४ यव है। वामांशवाली रेखाका अर्थात् चतुरस्रका मध्य (१५ अंगुलका आधा ७॥ अंगुल का) साधन कर प्रकालसे घुमा दे तो धनुषाकारकुण्ड बन जाता है। यह लघुपीठमालाका प्रकार है।

अथवा—२८ अंगुल दक्षश्रोणीवाली रेखा दक्षपार्श्वकी रेखा २० अंगुल की। मुख और पुच्छ की रेखा जो चतुरस्र के भीतर है। वह अलग अलग २४, २४ अंगुल की है। इसमें इतने ही बननेसे शूर्प बनजाता है। यह लघुपीठमाला दूसरा प्रकार है।

केतु कुण्ड का प्रथम प्रकार—

(१) (क) मध्य बिन्दु से ३ अंगुल हटाकर एक सीधी रेखा पूर्व से पश्चिम अर्थात्—दक्षिण दिशा में दे जिसका नाप ५४ अंगुल होगा। (२) मध्य बिन्दु से ४ अंगुल हटकार एक सीधी रेखा पश्चिम से पूर्व अर्थात्—उत्तर दिशा में दे जिसका नाप ४५ अंगुल होगा। (अर्थात् मध्य विन्दु से ४ अंगुल हटाकर साढ़े बाइस अंगुल की रेखा पूर्व दशामें और साढ़े बाइस अंगुल पश्चिम दिशामें (दक्षिण दिशा में) दे। वैसे ही साढ़े बाइस अंगुल की सीधी रेखा पश्चिम दिशा में और २२॥ अंगुल पूर्व दिशा में (उत्तर दिशा में) दे, (३) तदनन्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा में—पूर्व दिशा से ९ अंगुल पर एक चिह्न करे। (४) उस चिह्न से फिर ९ अंगुल पर दूसरा चिन्ह करे ऐसा करने से दो चिन्ह नव नव अंगुल के अलग २ हुए। वैसे कुल जगह १८ अंगुल हुई। (४) तदनन्तर जो पूर्व दिशा से ९ अंगुल पर चिन्ह किया है उस चिन्ह से २४ अंगुल की एक सीधी रेखा दक्षिण दिशा की तरफ ले जाय। (५)

दक्षिण दिशा वाली रेखा के पूर्व दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा में २४ अंगुल वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। वैसे ही

(केतुकुण्ड)

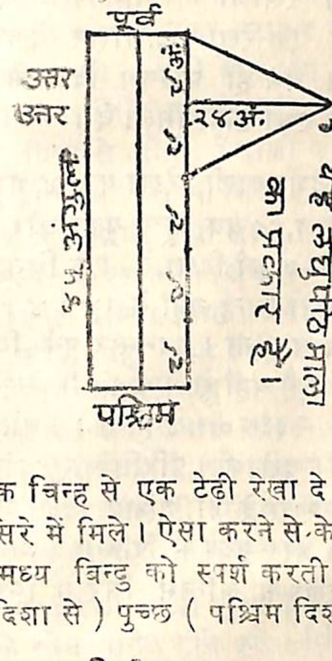

दूसरे ९ अंगुलात्मक चिन्ह से एक टेढ़ी रेखा दे जो २४ अंगुल वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। ऐसा करने से केतु कुण्ड ध्वजाकर बन जाता है। (क) मध्य बिन्दु को स्पर्श करती हुई एक रेखा मुख से प्रारंभकर (पूर्व दिशा से) पुच्छ (पश्चिम दिशा तक) में मिला दे।

द्वितीय प्रकार—

जैसे मण्डप १६ हाथ है तो फी भाग ५ हाथ ८ अंगुल होगा। तो वायव्यकोण का भाग भी ५ हाथ ८ अंगुल का होगा उसका मध्य दो हाथ ९९ अंगुल होगा। उस मध्य से (२९। ०। ०। ६) इक्कीस अंगुल ६ लिक्षा उत्तर की तरफ हटकर एक चिन्ह कहे उस चिन्ह से २९ अंगुल शून्य यव ६ यूका एक गोलाकार वृत्त बनाकर उस मध्य से

(यह मध्य की दण्ड बृहज्या ५८। १ । ४ होगी) दो अंगुल और ५ यूका हटाकर एक रेखा दे जो पूर्व में पश्चिम दिशा की तरफ हो अर्थात् दक्षिण दिशा की तरफ हो। वैसे ही उसी मध्य से २ अंगुल और ५ यूका हटाकर उत्तर की तरफ एक पूर्व से पश्चिम एक रेखा दे। जिन दोनों रेखाओं का नाम अलग ५८। ०। ३ होगा। तदनन्तर पूर्व दिशा से एक रेखा दक्षिणोत्तर देकर दोनों रेखाओं के अग्रभाग को मिला दे। वैसे ही पश्चिम दिशा से दक्षिणोत्तर दोनों रेखाओं के अग्रभाग से रेखा द्वारा मिला दे।

तदनन्तर दक्षिण दिशा वाली रेखा का ४ भाग बराबर बराबर करे। फी भाग १४ अंगुल, ४ यव, शून्य यूका और छः बालाग्र होगा। अर्थात् दक्षिण दिशा का अपूर्व दिशा से एक चिन्ह १४। ४। ०। ६ पर करे। तदनन्तर दूसरा चिन्ह वहाँ से १४। ४। ०। ६ पर मध्यसे करे। वही रेखा का मध्य होगा। तदनन्तर पूर्व दिशा जो १४। ४। ०। ६ पर चिन्ह किया है वहाँ से एक सीधी रेखा दक्षिण दिशा की तरफ दे जिसका नाप २३। ०। ४ होगा। अर्थात् वहाँ से जो रेखा चलेगी वह अग्निकोण (दक्षांश) परिधिके २४ अंशमें लगेगी। फिर पूर्व दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण दिशा में दी हुई रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। और मध्य में पश्चिम दिशा से एक टेढ़ी रेखा दे जो दक्षिण वाली रेखा के अन्तिम सिरे में मिले। ऐसा करने से ध्वजाकार कुण्ड बनेगा।

नोट – ३५ अंगुल की जो रेखा दक्षिण दिशा में दी गई है। जिसे 'दण्ड बृहज्जा' शब्द से कह सकते हैं। उस रेखा के पाँच भाग करे। फी भाग ७ अंगुल का होगा।

नोट—व्यास ५८। १। ४। गुणलव १९। ३। १। ३। इनांश १। ४। ७। ३। गुणलव और द्वादश का जोड़ २१।०।०।६। होगा।

तृतीय प्रकार केतु कुण्ड का कुण्डरत्नावली से–

५८ अंगुल, १ यव और ४ यूका के आधे को १४।४।३। प्रकाल से नाप कर मध्यविन्दु से दो अंगुल और ५ यूका हटाकर एक रेखा दक्षिण दिशा की तरफ (पूर्व से पश्चिम दिशा की तरफ दे। तद्वत् मध्य विन्दु से दो अंगुल और ५ यूका हटाकर उत्तर दिशा की तरफ (पूर्व से पश्चिम दिशा की तरफ) दे। इस रेखा नाप अलग-अलग ५८ अंगुल, ३ यूका होगा जिसे ध्वजदण्ड बृहज्ज्या शब्द से कहा जाता है। तदनन्तर पूर्व दिशा से दोनों रेखाओं को मिला दे रेखा द्वारा दक्षिणोत्तर। वैसी ही पश्चिम तरफ मिला दक्षिणोत्तर। ध्वजदण्ड बृहज्ज्या से दक्षिण दिशावाली रेखा जो है। जिसका नाप ५८।३। है उसका चार भाग करे प्रत्येक भाग अर्थात्—फी भाग १४ अंगुल, ४ यव, शून्य यूका और छः बालाग्र होगा। अर्थात्—पूर्व दिशा से—१४। ४।०।६ पर चिह्न करे। वह प्रथम चिह्न से १४।४।०।६। पर दूसरी चिह्न करे। तदनन्तर प्रथम चिह्न से—एक रेखा दक्षिण दिशा की तरफ दे, जिस रेखा का नाप लंबाई २३।०।७।४ होगा। फिर—पूर्व दिशा के कोने से एक टेढ़ी रेखा दे, जो दक्षिण दिशा में बढ़ी हुई रेखामें (२३।१।७।४) में मिले। वैसे ही दक्षिण दिशा से एक रेखा २३।०। ७४ वाली में मिले। ऐसा करने से केतु कुण्ड बन जाता है।

विशेष—कुण्डरत्नावली में जो श्लोक है—[मध्यात् घार्योदिशायां ततिगुण] ३ लवके स्वेन भागेन हीने कृते। ऐसा पढ़ा जाय तो उत्तम मालुम होता है। व्यास ५८।१।४ तृतीयांश १९।३।१।४ स्वद्वादशांश हुआ। व्यास ५८।१।४ का १२ वाँ भाग ४।६।६।३ हुआ इसको तृतीयांश से घटाने से १४।४।३। ०। होगा। यहीं पक्ष उत्तम है।

अर्थात् मध्य केन्द्र से १४।४।३। का एक वृत्त बनाकर उस वृत्तमें पूर्व ओर पश्चिम में एक रेखा लंबी दे जिसकी लंबाई ५८।१।१४ होगी। इस रेखा के मध्य भाग से एक रेखा दक्षिण की तरफ (२ अंगुल और

२ यूका हटाकर होगी। इस रेखा का जो होगा उस मध्यमें पूर्व दिशा की तरफ १४।४।३। पर एक चिह्न होगा। इसकी लम्बाई दक्षिण की तरफ २३।०।७।४ होगी।

ग्रहकुण्डों मे योनि का स्थान निर्देश—

कुण्डरत्नावल्याम्—

पञ्चास्रं च त्र्यस्रकं बाणकुण्डं दीर्घाम्नायास्त्रीति सौम्याग्निकाणि।
चापं शूर्पं पश्चिमज्यं च केतुर्दक्षाग्रः स्यात्सौमिकं चोत्तरास्यम्॥

निर्णयसिन्धुटीकायाम्—

यष्टिर्बाणैः सौम्यदिश्यग्र एव त्र्यस्रं तादृक्शूर्पकं पश्चिमास्यम्।
बार्हस्पस्पत्यं सौम्यदीर्घं धनुस्तत्पश्चाद् दिग्ज्यं शुक्रियं सौम्यकोणम्॥

नोट—(१) मध्य विन्दु की रेखा का नाप ५८ अंगुल ३ युका होगा जिसे दण्ड बृहज्ज्या शब्द से कहते हैं। और २५।१।४।४ वाली रेखा का नाप मध्य विन्दु से होगा। दक्षिण दिशा वाली रेखा से तो १३।०।७।४ होगा। पूरी रेखा का नाप दक्षिण से उत्तर जायगी। अर्थात् पूर्वदिशा से जो मध्य १४।४।०।६ पर करेंगे वही रेखा पूरी ५०।३।१ की होगी।

कुण्ड-मण्डपके सम्बन्धमें आवश्यक विचार व कुण्डोंके भेद

आठ प्रकार के कुण्ड–

चतुरस्त्र कुण्ड, योनिकुण्ड, अर्धचन्द्र कुण्ड, त्रिकोण कुण्ड, वृत्त कुण्ड, (वर्त्तुल कुण्ड), षडस्त्र कुण्ड, पद्म कुण्ड और अष्टास्त्र कुण्ड— ये आठ प्रकारके कुण्ड होते हैं।

एक कुण्ड–

एक कुण्ड के यज्ञमें मण्डपके मध्यमें ही कुण्ड बनता है। एक कुण्ड के यज्ञमें चतुरस्त्र अथवा पद्म कुण्डका निर्माण किया जाता है, किन्तु कामना-भेदसे अन्य कुण्डका भी निर्माण हो सकता है।

पाँच कुण्ड–

पाँच कुण्डके यज्ञमें पूर्वमें चतुरस्त्र, दक्षिणमें वृत्तार्ध (अर्धचन्द्र), पश्चिम में वृत्त (वर्त्तुल), उत्तर में पद्म और मध्यमें चतुरस्त्र कुण्ड ही (आचार्यकुण्ड) होता है।

नव कुण्ड–

नव कुण्डके यज्ञ में पूर्व में चतुरस्त्र, अग्निकोणमें योनिकुण्ड, दक्षिणमें अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध), नैर्ऋत्यकोणमें त्रिकोण, पश्चिममें वृत्त (वर्त्तुल), वायव्यकोणमें षडस्त्र, उत्तरमें पद्मकुण्ड, ईशान कोणमें अष्टास्त्र (अष्टकोण) और मध्यमें चतुरस्त्र कुण्ड ही (आचार्यकुण्ड) होता है।

चार कुण्ड–

चार कुण्डके यज्ञ में बीचमें जो प्रधानवेदी होती है। पूर्वमें चतुरस्त्र, दक्षिणमें अर्धचन्द्र, पश्चिममें वृत्त और उत्तरमे पद्मकुण्ड होता है।

नव कुण्डों की योनिपर विचार–

नव कुण्डके यज्ञमें पूर्व में चतुरस्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

अग्निकोणमें योनिकुण्ड होता है। इसमें योनि नहीं होती।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

नैर्ऋत्य कोणमें त्रिकोण कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

वायव्य कोणमें षडस्र कुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

उत्तरमें पद्मकुण्ड की योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

ईशानकोणमें अष्टास्र कुण्ड (अष्टकोण) की योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

मध्यमें चतुरस्र कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

पाँच कुण्डोंकी योनि पर विचार–

पाँच कुण्डके यज्ञमें मध्यके कुण्ड की (चतुरस्र कुण्डकी) योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्रही होती है।

पूर्वमें चतुरस्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशा में उत्तराग्र होती है।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

उत्तरमें पद्मकुण्डकी योनि पश्चिम दिशा में पूर्वाग्र होती है।

चार कुण्डों की योनि का विचार–

पूर्वमें चतुरस्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

दक्षिणमें अर्धचन्द्र कुण्डकी योनि दक्षिण दिशामें उत्तराग्र होती है।

पश्चिममें वृत्त कुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

उत्तरमें पद्मकुण्डकी योनि पश्चिम दिशामें पूर्वाग्र होती है।

मेखला और रंगका विचार कुण्डमें–

प्रत्येक कुण्डमें तीन-तीन मेखला होती हैं। ऊपरकी मेखलाका सफेद रंग, मध्यकी मेखलाका लाल रंग और नीचे की मेखलाका काला रंग होता है।

कुछ कुण्डोंका अलग-अलग फल–

चतुरस्र कुण्ड समस्त प्रकारकी सिद्धिको देनेवाला है। योनिकुण्ड पुत्रको देनेवाला है। अर्धचन्द्र कुण्ड (वृत्तार्ध कुण्ड) शुभ फलको देनेवाला है। त्रिकोण कुण्ड शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वृत्तकुण्ड (वर्तुलकुण्ड) शान्ति-स्थापन करनेवाला है। षडस्र कुण्ड मृत्युच्छेदन करनेवाला (मृत्युको दूर करनेवाला) है। पद्मकुण्ड वृष्टिको देनेवाला है। अष्टास्र कुण्ड रोगको हटानेवाला है।

वर्णभेद से कुण्डनिर्माण की व्यवस्था

एक कुण्डके यज्ञमें वर्णभेदसे ही कुण्ड बनाना चाहिये। जैसे—ब्राह्मणके लिये चतुरस्र, क्षत्रियके लिये वृत्त (वर्त्तुल), वैश्यके लिये अर्धचन्द्र (वृत्तार्ध) और शूद्रके लिये त्रिकोण कुण्ड कहा गया है। अथवा वर्णचतुष्टयके लिये चतुरस्र या वृत्त कुण्ड कहा गया है।

स्त्री यदि यज्ञ करे, तो उसके लिये योनिकुण्ड अथवा चतुरस्र कुण्ड के लिए कहा गया है।

विविध यज्ञों के कुण्डादि का विचार—

१—विष्णुयागमें १, ५ और ९ कुण्डों के निर्माण का विधान कुण्ड-मण्डपके ग्रन्थों में मिलता है।

२—प्रतिष्ठा और तुलादानादि के लिये ७ कुण्डका विधान 'नारद-पञ्चरात्र' में और चार कुण्डका विधान 'दानमयूख' में मिलता है।

३—एक कुण्ड के विष्णुयागमें एक कुण्डके महाविष्णुयाग में और एक कुण्डके अतिविष्णुयागमें ६ हाथ (५८ अङ्गुल और ६ यव) का कुण्ड होता है।

४ विष्णुयागमें ५ कुण्ड एक-एक हाथ (चौबीस अङ्गुल) लंबे और चौड़े होते है।

५—महाविष्णुयागमें ५ कुण्ड दो-दो हाथ (चौंतीस अङ्गुल) लंबे और चौड़े होते हैं।

६—अतिविष्णुयागमें ५ कुण्ड चार-चार हाथ (अड़तालीस अङ्गुल) के लंबे और चौड़े होते हैं।

७—रुद्रयागमें भी विष्णुयागकी तरह १, ५ और ९ कुण्ड होते हैं। कुछ लोग रुद्रयाग में रुद्रपदेन ११ कुंड बनाते हैं।

८—नवग्रहयागमें सूर्यकी प्रधानता होनेके कारण मध्य का कुंड ही प्रधानकुंड (आचार्यकुंड) होना चाहिये, यह 'शन्तिमयूख' का मत है।

९—कोटिहोममें १००, १०, २ अथवा १ कुंड होता है।

१०—सौ कुंडोंके यज्ञमें सभी कुंड वृत्त, पद्म अथवा चतुरस्र होते हैं। दस कुंडोंके यज्ञमें सभी कुंड वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्म होते हैं।

दो कुंडोंके यज्ञमें दोनों कुंड वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्म होते हैं।
एक कुंडके यज्ञमें वृत्त, चतुरस्र अथवा पद्मकुंड होता है।

११—कोटिहोममें प्रधानकुंड नैर्ऋत्यकोणमें होना चाहिये, यह 'शान्तिमयूख' आदिका मत है।

१२—कोटिहोम में प्रधानवेदी पूर्व दिशामें होती है।

१३—कोटिहोममें अग्निस्थापन प्रधानकुंडमें ही करना चाहिये और प्रधानकुंड से ही अग्नि ले जाकर अन्य कुंडों में अग्निस्थापन करना चाहिये।

१४—कोटिहोममें सौ कुंड हों, तो प्रत्येक कुंड एक-एक हाथ लंबा और चौड़ा होता है।

कोटिहोममें दस कुंड हों, तो प्रत्येक कुंड छ-छ हाथ लंबा और चौड़ा होता है।

कोटिहोम में दो कुंड हों, तो दोनों कुंड छः-छः हाथ लंबे और चौड़े होते हैं।

कोटिहोममें एक कुंड हो, तो आठ हाथ का अथवा दस हाथ का अथवा सोलह हाथ का कुंड होता है।

आहुतियों के अनुसार कुण्ड का प्रमाण—

पचास से कम आहुति कुंड में नहीं होती, किन्तु स्थण्डिल होता है। पचास से निन्यानवे तक आहुति में इक्कीस अङ्गुलका (बँधी हुई मुट्ठी भर हाथका) कुण्ड होता है।

सौ से नौसौ निन्यावे तक आहुतिमें २२½ अङ्गुल (अरत्निमात्र) का कुण्ड होता है।

एक हजार—आहुतिमें १ हाथका कुण्ड होता है ।
दस हजार—आहुतिमें २ हाथका कुण्ड होता है ।
एक लाख—आहुतिमें २ हाथका कुण्ड होता है ।
दस लाख—आहुतिमें ६ हाथका कुण्ड होता है ।
एक करोड़—आहुतिमें ८ हाथका कुण्ड होता है ।

शारदातिलक का मत है कि कोटिहोम में १० हाथका कुण्ड होना चाहिए—

'दशहस्तमितं कुण्डं कोटिहोमेऽपि दृश्यते ।'

किसी आचार्यका मत है कि कोटिहोममें सोलह हाथका कुण्ड होना चाहिये ।

[पेज ९१ से ९५ तक]

[उद्धृत अंश]

विविध यज्ञों के स्वाहाकार

यज्ञादौ स्वाहाकारनिर्णयः

सर्वैरपि पद्धतिकारैः पुरुषसूक्तस्य समग्रस्य अन्ते नाममन्त्रेण संयुतस्यैकमन्त्रत्वमुक्तम्। अतो मन्त्रादावेवोङ्कारः प्रयोक्तव्यः, एवं यत्र ऋचोऽन्ते नाम-मन्त्रस्यापि संयोजनं विहितं तत्र सर्वत्रापि नाममन्त्रसहितस्यैव ऋगादेः असति बाधके एकमन्त्रत्वप्रतीत्या "मन्त्रान्तैः कर्मादिः सान्निपात्योऽभिधानात्" इति सूत्रकारवचनेन मन्त्राणां प्रयोगसमवेतार्थस्मारकत्वमिति मीमांसान्यायेन च मन्त्रैकत्वावसानात्। मन्त्रभेदाङ्गीकारे विकल्पापत्त्या मन्त्रादावेवोङ्कारः पठनीयो न तु तन्मध्ये नाममन्त्रादौ। तथा च "ॐ सहस्रशीर्षा० साध्याः सन्ति देवाः नारायणाय स्वाहा" इत्युक्त्वा होमः कार्यः, न तु 'नारायणाय स्वाहा' इत्यस्य पूर्वम् ओङ्कारः पठनीयः। तथात्वे मन्त्रभेदापत्त्या पूर्वोक्तदोषापत्तेः। यत्र तु ऋगन्ते द्वादशाक्षरमन्त्रस्य सयोजनं विहितं तत्र ओङ्कारघटितस्यैव द्वादशाक्षरसम्पत्त्या ओङ्कारः पठनीय एव। यथा "ॐ सहस्रशीर्षा० सन्ति देवाः ॐ नमो भगवते वासुदेवाय स्वाहा" इति। एवं यत्र ऋगन्ते नाममन्त्रसयोजन विहितं तत्र ऋगन्ते चतुर्थ्यन्तन्नाम पठित्वा तदन्ते स्वाहाकारन्नियोज्य होमः कार्यः। यथा—"ॐ सहस्रशीर्षा० दशाङ्गुलम् विष्णवे स्वाहा" इति। एवं केवलनाममन्त्रेण यत्र हवनमुक्तं तत्रापि चतुर्थ्यन्तन्नाम पठित्वा तदुपरि स्वाहाकारं संयोज्य हवनं कर्तव्यम्। यथा "अग्नये स्वाहा" इत्यादि। एवमेव सर्वेषु सूत्रेषु विधिरस्ति। न तु नाममन्त्रान्ते नमः शब्दं संयोज्य तदुपरि स्वाहाकारं संयोज्य "अग्नये नमः स्वाहा" इति होमः समुचितः। किन्तु "अग्नये स्वाहा" इत्येव। यत्र तु मन्त्रादौ

नमोऽन्तस्यैव मन्त्रत्वमुक्तं तत्र परं "नमः" शब्दं पठित्वा तदुपरि स्वाहाकारो योजनीयः। यथा अग्नये नमः स्वाहा" इति। नैतावता सर्वस्यापि नाम्नोऽन्ते "नमः" शब्दं पठित्वा स्वाहाकारो योजनीयः। यत्र स्वाहान्तस्यैव मन्त्रत्वं तत्र तावतैव होमो न तु तदुपरि अन्यः स्वाहाकारः, यथा "वेट् स्वाहा" इत्यादौ।

श्रुतिषु च 'वाजाय स्वाहा" इत्यादि स्पष्टलिखितत्वान्नास्ति सन्देहलेश इति। ये तु "नमः" शब्दोत्तरं 'स्वाहा' शब्दं पठन्ति तत्र मूलमन्वेष्यम्। तस्मान्नमःशब्दरहितेनैव नाममन्त्रेण होम इत्युद्योतरत्नादाविति प्रतिष्ठेन्दुः।

—विद्याधर गौड़

अथ विष्णुयागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिर्ठं॰ सर्व्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुषऽ एवेदर्ठं॰ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य व्विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्वऽ उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो व्विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽ अभि ॥ ४ ॥

ततो व्विराडजायत व्विराजोऽ अधि पूरुषः ।
सजातोऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे व्वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाᳬंसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

तस्मादश्वाऽ अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽ अजावयः ॥ ८ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवाऽ अयजन्त साध्याऽ ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽ उच्येते ॥१०॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪं शूद्रोऽ अजायत ॥११॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽ अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
नाभ्याऽ आसीदन्तरिक्षᳪं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽ अकल्पयन् ॥१३॥
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽ इध्मः शरद्धविः ॥१४॥
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽ अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

अथ लक्ष्मीयागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥ १ ॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवी मुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ४ ॥

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्येऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥ ५ ॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसानुदन्तु या अन्तरा या बाह्या अलक्ष्मीः॥६॥

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्न कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥ ७ ॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥ ८ ॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ ९ ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१३॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ॥१४॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतंगावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् १५

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥

॥ इति लक्ष्मीयाग स्वाहाकार मन्त्राः ॥

अथ रुद्रयाग स्वाहाकार मन्त्राः

ॐ गणानान्त्वा० स्वाहा ।

ॐ अम्बेऽ अम्बिके० स्वाहा । इति हुत्वा,

ॐ यज्जाग्रतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ सहस्रशीर्षा० (१६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ अद्भ्यः सम्भृता० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ आशुः शिशानो० (१२ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ विभ्राड् बृहत्पिबतु० (१७ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ नमस्ते रुद्र मन्यवऽ उतो तऽ इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः स्वाहा ॥ १ ॥

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ यामिषुङ्गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवाङ्गिरित्र ताङ्कुरु मा हिꣳसीः पुरुषञ्जगत् स्वाहा ॥ ३ ॥

ॐ शिवेन व्वचसा त्त्वा गिरिशाच्छा व्वदामसि । यथा नः सर्व्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमनाऽ असत् स्वाहा ॥ ४ ॥

ॐ अद्ध्यवोचदधिवक्ता प्प्रथमो दैव्व्यो भिषक् । अहीँश्च सर्व्वाञ्जम्भयन्त्सर्व्वाश्च यातुधान्न्योऽधराचीः परासुव स्वाहा ॥ ५ ॥

ॐ असौ यस्ताम्म्रोऽ अरुणऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनठं॰ रुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो वैषाॅं हेडऽ ईमहेस्वाहा॥६॥

ॐ असौ योऽवसर्प्पति नीलग्ग्रीवो व्विलोहितः । उतैनङ्गोपाऽ अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः सः दृष्टो मृडयाति नः स्वाहा ॥७॥

ॐ नमोऽस्तु नीलग्ग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो येऽ अस्य सत्त्वानोऽहन्तेभ्योऽकरन्नमः स्वाहा ॥ ८ ॥

ॐ प्रमुञ्च धन्न्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्ज्याम् । याश्च ते हस्तऽ इषवः परा ता भगवो व्वप स्वाहा ॥ ९ ॥

ॐ व्विज्ज्यन्धनुः कपर्दिनो व्विशल्ल्यो बाणवाँ२ऽ उत । अनेशन्नस्य याऽ इषवऽ आभुरस्य निषङ्गधिः स्वाहा ॥ १० ॥

ॐ या ते हेतिर्म्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्व्विश्श्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज स्वाहा ॥ ११ ॥

ॐ परि ते धन्न्वनो हेतिरस्मान्न्वृणक्तु व्विश्श्वतः । अथो यऽ इषुधिस्तवारेऽ अस्मन्निधेहि तम् स्वाहा ॥ १२ ॥

ॐ अवतत्य धनुष्ट्वठं सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य्य शल्ल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव स्वाहा ॥ १३ ॥

ॐ नमस्तऽ आयुधायानातताय धृष्ण्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्न्वने स्वाहा ॥ १४ ॥

ॐ मा नो महान्तमुत मा नोऽअर्भकम्मा नऽ उक्षन्तमुत मा नऽ उक्षितम् । मा नो व्वधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्प्रियास्तन्न्वो रुद्र रीरिषः स्वाहा ॥ १५ ॥

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽ आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो व्वीरान् रुद्र भामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे स्वाहा ॥ १६ ॥

ॐनमो हिरण्यबाहवे सेनान्न्ये दिशाञ्चपतयेनमः स्वाहा॥१७॥
ॐनमो व्वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमः स्वाहा॥१८॥
ॐनमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनाम्पतये नमः स्वाहा॥१९॥
ॐनमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमः स्वाहा॥२०॥
ॐनमो बभ्लुशाय व्याधिनेन्नानाम्पतये नमः स्वाहा॥२१॥
ॐनमो भवस्य हेत्यै जगताम्पतये नमः स्वाहा॥२२॥
ॐनमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमः स्वाहा॥२३॥
ॐनमः सूतायाहन्त्यै व्वनानाम्पतये नमः स्वाहा॥२४॥
ॐनमो रोहिताय स्थपतये व्वृक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा॥२५॥
ॐनमो भुवन्तये व्वारिवस्कृतायौषधीनाम्पतये नमःस्वाहा॥२६॥
ॐनमो मन्त्रिणे व्वाणिजाय कक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा॥२७॥
ॐनमऽउच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनाम्पतये नमः स्वाहा॥२८॥
ॐनमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वनाम्पतये नमः स्वाहा॥२९॥

ॐनमः सहमानाय निव्याधिनऽ आव्याधिनीनाम्पतये नमः स्वाहा॥३०॥

ॐनमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानाम्पतये नमः स्वाहा॥३१॥
ॐनमो निचेरवे परिचरायारण्यानाम्पतये नमः स्वाहा॥३२॥
ॐनमो व्वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनाम्पतये नमः स्वाहा॥३३॥

ॐ नमो निषङ्गिणऽइषुधिमते तस्कराणाम्पतये नमः स्वाहा॥३४।
ॐ नमः सृकायिभ्यो जिघा ँसद्भ्यो मुष्णताम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३५ ॥
ॐ नमोऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३६ ॥
ॐ नमऽ उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानाम्पतये नमः स्वाहा।३७।
ॐ नमऽ इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥३८॥
ॐ नमऽ आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमः स्वाहा।३९।
ॐ नमऽ आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४०॥
ॐ नमो विसृजद्भ्यो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥४१
ॐ नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४२॥
ॐ नमः शयानेभ्यऽ आसीनेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४३॥
ॐ नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४४॥
ॐ नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४५॥
ॐ नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ४६॥
ॐ नमऽ आव्याधिनीभ्यो विविद्ध्यन्तीभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४७॥
ॐ नमऽ उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४८॥
ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥४९॥
ॐ नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५०॥
ॐ नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५१॥

ॐनमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५२॥
ॐनमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५३॥
ॐनमो रथिभ्योऽ अरथेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५४॥
ॐनमः क्षत्तृभ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५५॥
ॐनमो महद्भ्योऽ अर्भकेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५६॥
ॐनमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५७॥
ॐनमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥५८॥
ॐनमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नम स्वाहा ॥५९॥
ॐनमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥६०॥
ॐनमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥६१॥
ॐनमो भवाय च रुद्राय च स्वाहा ॥६२॥
ॐनमः शर्वाय च पशुपतये च स्वाहा ॥६३॥
ॐनमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च स्वाहा ॥६४॥
ॐनमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च स्वाहा ॥६५॥
ॐनमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च स्वाहा ॥६६॥
ॐनमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च स्वाहा ॥६७॥
ॐनमो मीढुष्टमाय चेषुमते च स्वाहा ॥६८॥
ॐनमो ह्रस्वाय च वामनाय च स्वाहा ॥६९॥
ॐनमो बृहते च वर्षीयसे च स्वाहा ॥७०॥
ॐनमो वृद्धाय च सवृधे च स्वाहा ॥७१॥
ॐनमोऽग्र्याय च प्रथमाय च स्वाहा ॥७२॥

ॐनमऽ	आशवे	चाजिराय	च	स्वाहा	॥७३॥
ॐनमः	शीग्घ्याय	च शीभ्याय	च	स्वाहा	॥७४॥
ॐनमऽ	ऊर्म्याय	चावस्वन्याय	च	स्वाहा	॥७५॥
ॐनमो	नादेयाय	च द्वीप्याय	च	स्वाहा	॥७६॥
ॐनमो	ज्येष्ठाय	च कनिष्ठाय	च	स्वाहा	॥७७॥
ॐनमः	पूर्वजाय	चापरजाय	च	स्वाहा	॥७८॥
ॐनमो	मद्ध्यमाय	चापगल्भाय	च	स्वाहा	॥७९॥
ॐनमो	जघन्याय	च बुद्ध्याय	च	स्वाहा	॥८०॥
ॐनमः	सोभ्याय	च प्रतिसर्याय	च	स्वाहा	॥८१॥
ॐनमः	याम्याय	च क्षेम्याय	च	स्वाहा	॥८२॥
ॐनमः	श्लोक्याय	चावसान्याय	च	स्वाहा	॥८३॥
ॐनमऽ	उर्वर्याय	च खल्याय	च	स्वाहा	॥८४॥
ॐनमो	वन्याय	च कक्ष्याय	च	स्वाहा	॥८५॥
ॐनमः	श्रवाय	च प्रतिश्रवाय	च	स्वाहा	॥८६॥
ॐनमऽ	आशुषेणाय	चाशुरथाय	च	स्वाहा	॥८७॥
ॐनमः	शूराय	चावभेदिने	च	स्वाहा	॥८८॥
ॐनमो	बिल्मिने	च कवचिने	च	स्वाहा	॥८९॥
ॐनमो	वर्म्मिणे	च वरूथिने	च	स्वाहा	॥९०॥
ॐनमः	श्रुताय	च श्रुतसेनाय	च	स्वाहा	॥९१॥
ॐनमो	दुन्दुभ्याय	चाहनन्याय	च	स्वाहा	॥९२॥
ॐनमो	धृष्णवे	च प्रमृशाय	च	स्वाहा	॥९३॥

ॐनमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च स्वाहा ॥९४॥
ॐनमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च स्वाहा ॥९५॥
ॐनमः स्वायुधाय च सुधन्वने च स्वाहा ॥९६॥
ॐनमः स्रुत्याय च पथ्याय च स्वाहा ॥९७॥
ॐनमः काट्याय च नीप्याय च स्वाहा ॥९८॥
ॐनमः कुल्याय च सरस्याय च स्वाहा ॥९९॥
ॐनमो नादेयाय च वैशन्ताय च स्वाहा ॥१००॥
ॐनमः कूप्याय चावट्याय च स्वाहा ॥१०१॥
ॐनमो वीध्र्याय चातप्याय च स्वाहा ॥१०२॥
ॐनमो मेघ्याय च विद्युत्याय च स्वाहा ॥१०३॥
ॐनमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च स्वाहा ॥१०४॥
ॐनमो वात्याय च रेष्म्याय च स्वाहा ॥१०५॥
ॐनमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च स्वाहा ॥१०६॥
ॐनमः सोमाय च रुद्राय च स्वाहा ॥१०७॥
ॐनमस्ताम्राय चारुणाय च स्वाहा ॥१०८॥
ॐनमः शङ्गवे च पशुपतये च स्वाहा ॥१०९॥
ॐनमऽ उग्राय च भीमाय च स्वाहा ॥११०॥
ॐनमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च स्वाहा ॥१११॥
ॐनमो हन्त्रे च हनीयसे च स्वाहा ॥११२॥
ॐनमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः स्वाहा ॥११३॥
ॐनमस्ताराय स्वाहा ॥११४॥

ॐनमः शम्भवाय च मयोभवाय च स्वाहा ॥११५॥
ॐनमः शङ्कराय च मयस्कराय च स्वाहा ॥११६॥
ॐनमः शिवाय च शिवतराय च स्वाहा ॥११७॥
ॐनमः पार्य्याय चवार्य्याय च स्वाहा ॥११८॥
ॐनमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च स्वाहा ॥११९॥
ॐनमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च स्वाहा ॥१२०॥
ॐनमः शष्प्याय च फेन्याय च स्वाहा ॥१२१॥
ॐनमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च स्वाहा ॥१२२॥
ॐनमः किंशिलाय च क्षयणाय च स्वाहा ॥१२३॥
ॐनमः कपर्द्दिने च पुलस्तये च स्वाहा ॥१२४॥
ॐनमऽ इरिण्याय च प्रपथ्याय च स्वाहा ॥१२५॥
ॐनमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च स्वाहा ॥१२६॥
ॐनमस्तल्प्याय च गेह्याय च स्वाहा ॥१२७॥
ॐनमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च स्वाहा ॥१२८॥
ॐनमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च स्वाहा ॥१२९॥
ॐनमः शुष्क्याय च हरित्याय च स्वाहा ॥१३०॥
ॐनमः पांसव्याय च रजस्याय च स्वाहा ॥१३१॥
ॐनमो लोप्याय चोलप्याय च स्वाहा ॥१३२॥
ॐनमऽ ऊर्व्याय च सूर्व्याय च स्वाहा ॥१३३॥
ॐनमः पर्णाय च पर्णशदाय च स्वाहा ॥१३४॥
ॐनमऽ उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च स्वाहा ॥१३५॥

ॐनमऽ आखिदते च प्रखिदते च स्वाहा ॥१३६॥
ॐनमऽ इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥१३७॥
ॐनमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यो स्वाहा ॥१३८॥
ॐनमो विचिन्वत्केभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यः स्वाहा॥१३९॥
ॐनमो विक्षिणत्केभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यः स्वाहा॥१४०॥
ॐनमः आनिर्हतेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यः स्वाहा॥१४१॥
ॐद्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्मा भेर्म्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत् स्वाहा॥१४२॥
ॐइमा रुद्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वम्पुष्टङ्ग्रामेऽ अस्मिन्ननातुरम् स्वाहा ॥१४३॥
ॐ या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे स्वाहा ॥१४४॥
ॐपरि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्म्मतिरघायोः। अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड स्वाहा ॥१४५॥
ॐमीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव परमे वृक्षऽआयुधन्निधाय कृत्तिं व्वसानऽआचर पिनाकम्बिभ्रदागहि स्वाहा॥१४६॥
ॐ विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽ अस्तु भगवः।
यास्ते सहस्रᳬ हेतयोऽन्न्यमस्मन्निवपन्तु ताः स्वाहा ॥१४७॥
ॐ सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि स्वाहा ॥१४८॥

ॐ असङ्ख्याता सहस्राणि य रुद्द्राऽ अधि भूम्म्याम् ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१४९॥
ॐ अस्मिन्न्महत्यण्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽ अधि ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५०॥
ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः दिवᳫं रुद्द्राऽ उपश्रिश्रताः ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५१॥
ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्व्वाऽ अधः क्षमाचराः ।
तेषाᳫं सहस्रयोजऽनेव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५२॥
ॐ ये व्वृक्षेषु शष्प्पिञ्जरा नीलग्ग्रीवा व्विलोहिताः ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५३॥
ॐ ये भूतानामधिपतयो व्विशिखासः कपर्द्दिनः ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५४॥
ॐ ये पथाम्पथिरक्षयऽ ऐलबृदाऽ आयुर्य्युधः ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५५॥
ॐ ये तीर्त्थानि प्प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५६॥
ॐ येऽन्नेषु व्विविद्ध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५७॥
ॐ यऽ एतावन्तश्च्च भूयाᳫंसश्च्च दिशो रुद्द्रा व्वितस्त्थिरे ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ॥१५८॥

ॐनमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्चनो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः स्वाहा ॥१५९॥

ॐनमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः। तेभ्योदश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः स्वाहा ॥१६०॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः स्वाहा॥१६१॥

ॐभूः, ॐभुवः, ॐस्वः। ॐवयठं. सोम० (८ मन्त्राः) (पाठमात्रम्)।

ॐउग्रश्च० (७ मन्त्राः) (पाठमात्रम्)।

ॐवाजश्च० ॥ १ ॥ प्राणश्च० ॥ २ ॥
ओजश्च० ॥ ३ ॥ ज्यैष्ठ्यं च० ॥ ४ ॥ स्वाहा।

(२) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐसत्यञ्च० ॥१॥ ऋतञ्च० ॥२॥ यन्ता च० ॥३॥
शञ्च० ॥ ४ ॥ स्वाहा।

(३) ॐनमस्ते० (१६१) आहुतयः) ।

ॐऊर्क् च० ॥१॥ रयिश्च० ॥२॥ वित्तञ्च० ॥३॥ व्रीहयश्च० ॥४॥ स्वाहा ।

(४) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐअश्मा च० ॥१॥ अग्निश्च० ॥२॥ व्वसु च० ॥३॥ स्वाहा ।

(५) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐअग्निश्च मऽ इन्द्रश्च० ॥१॥ मित्रश्च० ॥२॥ पृथिवी च० ॥३॥ स्वाहा ।

(६) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐअꣳशुश्च० ॥१॥ आग्रयणश्च० ॥२॥ स्रुचश्च० ॥३॥ स्वाहा ॥

(७) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐअग्निश्च० ॥१॥ व्रतञ्च० ॥२॥ स्वाहा ।

(८) ॐनमस्ते (१६१ आहुतयः) ।

ॐएका च० ॥१॥ स्वाहा ।

(९) ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐचतस्रश्च० ॥१॥ स्वाहा ।

(१०) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।

ॐत्र्यविश्च० ॥१॥ पष्ठ्वाट् च० ॥२॥ स्वाहा ।

(पुनः) ॐयज्जाग्रतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐसहस्रशीर्षा० (१६ मन्त्राः) स्वाहा ।
ॐअद्भ्यः सम्भृतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।
ॐआशुः शिशानः (१२ मन्त्राः) स्वाहा ।
ॐविभ्राड् बृहत् पिबतु० (१७ मन्त्राः) स्वाहा ।
(११) ॐनमस्ते० (१६१ आहुतयः) ।
ॐवाजाय स्वाहा० ॥१॥
आयुर्यज्ञेन कल्पताम्० ॥२॥ स्वाहा ।
ॐऋचं वाचम्० स्वाहा ।
ॐयन्मे छिद्रम्० स्वाहा ।
ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुः० स्वाहा ।
ॐकयानश्चित्रः० स्वाहा ।
ॐकस्त्वा सत्यो मदानाम्० स्वाहा ।
ॐअभी षु णः० स्वाहा ।
ॐकया त्वन्नऽ ऊत्याभि० स्वाहा ।
ॐइन्द्रो विश्वस्य० स्वाहा ।
ॐशं नो मित्रः शं वरुणः० स्वाहा ।
ॐशन्नो वातः पवताᳬं० शन्नः० स्वाहा ।
ॐअहानि शं भवन्तु नः स्वाहा ।
ॐशन्नो देवीः० स्वाहा ।
ॐस्योना पृथिवी स्वाहा ।

ॐआपो हि ष्ठा० स्वाहा।
ॐयो वः शिवतमो रसः स्वाहा।
ॐतस्माऽ अरं गमाम वः० स्वाहा।
ॐद्यौः शान्तिः० स्वाहा।
ॐदृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा० स्वाहा।
ॐदृते दृꣳह मा ज्योक्ते० स्वाहा।
ॐनमस्ते हरसे शोचिषे० स्वाहा।
ॐनमस्तेऽ अस्तु विद्युते० स्वाहा।
ॐयतोयतः समीहसे० स्वाहा।
ॐसुमित्रिया नऽ आपः० स्वाहा।
ॐतच्चक्षुर्देवहितम्० स्वाहा।
ॐसद्योजातम्० (५ मन्त्राः) [पाठमात्रम्]।
ततः षडङ्गन्यासं कुर्यादिति।

॥ इति रुद्रयाग स्वाहाकार मंत्रा समाप्तः ॥

अथ सूर्ययागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ व्विब्भ्राड् बृहत्पिबतु सोम्म्यं मद्ध्वायुर्द्दधद्यज्ञपताव विह्रुतम् ॥ व्वातजूतो योऽ अभिरक्षति त्मना प्प्रजाः पुपोष पुरुधा व्विराजति ॥ १ ॥

उदुत्त्यं जातवेदसं देवं व्वहन्ति केतवः ॥ दृशे व्वि-श्वाय सूर्य्यम् ॥ २ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२॥ अनु । त्वं व्वरुण पश्यसि ॥ ३ ॥

दैव्व्याव्वद्ध्वर्य्यूऽ आगतर्ठ० रथेन सूर्य्यत्वचा ॥ मद्ध्वा यज्ञर्ठ० समञ्जाथे ॥ तं प्रत्नथाऽयं व्वेनश्चित्रं देवानाम् ॥ ४ ॥

तं प्रत्नथा पूर्व्वथा व्विश्वथेमथा ज्ज्येष्ठतातिं बर्हिषदर्ठ० स्वर्विदम् ॥ प्रतीचीनं व्वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु व्वर्द्धसे ॥ ५ ॥

अयं व्वेनश्चोदयत्पृश्निगब्भा ज्ज्योतिर्ज्जरायू रजसो व्विमाने ॥ इममपार्ठ० सङ्गमे सूर्य्यस्य शिशुन्न व्विप्प्रा मतिभी रिहन्ति ॥ ६ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्म्मित्रस्य व्वरुणस्याग्नेः ॥

आप्रा द्यावापृथिवीऽ अन्तरिक्षर्ठ० सूर्य्यऽ आत्मा जगतस्त-स्थुषश्च ॥ ७ ॥

आ नऽ इडाभिर्व्विदथे सुशस्ति व्विश्वानरः सविता देवऽ एतु ॥ अपि यथा युवानो मत्सथा नो व्विश्वं जगद-भिपित्वे मनीषा ॥ ८ ॥

यदद्य कच्च व्वृत्रहन्नुदगाऽ अभि सूर्य्य ॥ सर्व्वं तदिन्द्र ते व्वशे ॥ ९ ॥

तरणिर्व्विश्वदर्शतो ज्ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य ॥ व्विश्व-माभासि रोचनम् ॥ १० ॥

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मद्ध्या कर्त्तोर्व्विततर्ठ० सञ्जभार । यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री व्वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ११ ॥

तन्मित्रस्य व्वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुप-स्त्थे ॥ अनन्तमन्न्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्न्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ १२ ॥

बण्महाँ२॥ असि सूर्य्य बडादित्य महाँ२॥ असि ॥ महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२॥ असि ॥ १३ ॥

बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२॥ असि सत्रा देव महाँ२॥ असि ॥ मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो व्विभु ज्ज्योतिर-दाब्भ्यम् ॥ १४ ॥

श्रायन्तऽ इव सूर्य्यं व्विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ॥ व्वसूनि जाते जनमानऽ ओजसा प्प्रति भागं न दीधिम ॥ १५ ॥

अद्या देवाऽ उदिता सूर्य्यस्य निरꣳहसः पिपृता निरवद्यात् ॥ तन्नो मित्रो व्वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवीऽ उत द्यौः ॥ १६ ॥

आ कृष्णेन रजसा व्वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ॥ हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥१७॥

॥ इति सूर्ययाग स्वाहाकारमंत्राः समाप्ताः ॥

अथ गणेशयागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ आ तू नऽ इन्द्र व्वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमागहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥ १ ॥

त्वमिन्द्र प्प्रतूर्त्तिष्वभि व्विश्वाऽ असि स्पृधः । अशस्तिहा जनिता व्विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्ष्यतः ॥ २ ॥

अनु ते शुष्ष्मन्तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुन्न मातरा । व्विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्न्यवे व्वृत्रं यदिन्द्र तूर्व्वसि ॥ ३ ॥

यज्ञो देवानां प्प्रत्येति सुम्म्नमादित्यासो भवता मृड-यन्तः । आवोऽर्व्वाची सुमतिर्व्ववृत्त्यादर्ठ० होश्चिद्या व्वरिवोवित्तरासत् ॥ ४ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वर्ठ० शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्न्नोऽ अघशर्ठ० सऽ ईशत ॥ ५ ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्म्मधुमन्तः सुतासः । व्वह व्वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥६॥

गावऽ उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्ण्णा हिरण्यया ॥ ७ ॥

काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादसा सधस्त्थऽ आ ॥ ८ ॥

॥ इति गणेशयाग स्वाहाकार मंत्राः समाप्तः ॥

अथ प्रजापतियागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ ब्राह्मणमद्य व्विदेयं पितृमन्तं पैतृमन्यमृषिमार्षेयठं॰ सुधातुदक्षिणाम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत॥ १॥

माऽतेव पुत्रं पृथिवीपुरीष्यमग्निᳯं स्वे योनावभारुखा । तां व्विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्व्विश्वकर्म्मा व्विमुञ्चतु ॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेनऽ आवः । स बुद्ध्न्याऽ उपमाऽ अस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥ ३ ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेजऽ इन्द्रियठं॰ सुरया सोमः सुतऽ आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ४ ॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽ इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्व्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्य्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्ज्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ ५ ॥

ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः । इन्द्रः पृथिव्यै व्वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ६ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो व्विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्तु व्वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवीऽ अनेहसा । पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्न्नोऽ अघशꣳ सऽ ईशत ॥ ८ ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो व्वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय व्वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयायाऽ अयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ९ ॥

ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्मऽ इयर्त्ति प्रभृतो मेऽ अद्रिः । आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी व्वहतस्ता नोऽ अच्छ ॥ १० ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व । व्विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम व्विदथे सुवीराः । यऽ इमा व्विश्वा व्विश्वकर्म्मा यो नः पितान्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥ ११ ॥

॥ इति प्रजापतियाग स्वाहाकार मंत्राः समाप्तः ॥

अथ नवग्रहयागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥१॥

इमं देवा॰ असपत्नठं॰ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश॰ एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाठं॰ राजा ॥ २ ॥

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या॰ अयम् ।
अपाठं॰ रेताठं॰ सि जिन्वति ॥ ३ ॥

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सठं॰ सृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे॰ अध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ ४ ॥

ॐ बृहस्पतेऽअति यदर्य्यो॰ अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस॰ ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥५॥

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानठं॰ शुक्रमन्धस॰ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु ॥ ६ ॥

ॐ शन्नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये ।
शं य्योरभिस्रवन्तु नः ॥ ७ ॥

ॐ कयानश्चित्रऽ आभुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ८ ॥

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे वेशो मर्याऽ अपेशसे । समुषद्भिर-जायथाः ॥ ९ ॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १ ॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूप-मश्विनौ व्व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुम्मऽ इषाण सर्वलोकम्मऽ इषाण ॥ २ ॥

ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमानऽ उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहूऽउपस्तुत्यं महि जातं तेऽअर्वन् ॥ ३ ॥

ॐ विष्णो रराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रे स्थो व्विष्णोः स्यूरसि व्विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि व्विष्णवे त्वा ॥ ४ ॥

ॐ ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो व्वेनऽ आवः । सबुदूध्न्याऽ उपमा अस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥ ५ ॥

ॐ सजोषाऽ इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर
व्विद्वान्। जहिशत्रूँ२॥ रप मृधोनुदस्वाथाभयं कृणुहि
व्विश्वतो नः ॥ ६ ॥

ॐ यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा स्वाहा धर्म्माय स्वाहा
धर्मः पित्रे ॥ ७ ॥

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽ उन्नयामि। समापोऽ
अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ ८ ॥

ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ ९ ॥

ॐअग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे। देवाँ२॥ आसादयादिह।१।

ॐआपो हिष्ठा मयोभुवस्तानऽ ऊर्ज्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे।२।

ॐस्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः
शर्म्म सप्रथाः ॥ ३ ॥

ॐ इदं व्विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाठं॰
सुरे स्वाहा ॥ ४ ॥

ॐ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रठं॰ हवे हवे सुहवठं॰ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रठं॰ स्वस्ति। नो मघवा धात्विन्द्रः॥५॥

ॐअदित्यै रास्नासीन्द्राण्याऽ उष्णीषः। पूषासि धर्माय दीष्व॥६॥

ॐ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो व्विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽ अस्तु व्वयठं॰ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ७ ॥

ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

ॐ ब्रह्मयज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो व्वेनऽ आवः । स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य व्विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च व्विवः ॥ ९ ॥

॥ इति नवग्रहयाग स्वाहाकार मन्त्राः समाप्त ॥

अथ विश्वाशान्तियागस्वाहाकारमन्त्राः

ॐ ऋचं व्वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये। व्वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ १ ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो व्वातितृण्णं बृहस्पतिर्म्मे तद्दधातु। शन्नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्व्वरेण्यं भर्ग्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

कया नश्चित्रऽ आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे व्वसु ॥ ५ ॥

अभी षुणः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

कया त्वं नऽ ऊत्याभि प्रमन्दसे व्वृषन्। कया स्तोतृभ्यऽ आभर ॥ ७ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नोऽ अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं नऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

शं नो वातः पवताᳬं शं नस्तपतु सूर्यः। शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽ अभिवर्षतु ॥ १० ॥

अहानि शं भवन्तु नः शᳬं रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं नऽ इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं नऽ इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं नऽ इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः ॥ ११ ॥

शं नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ १२ ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता नऽ ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्ष से ॥ १४ ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

तस्माऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳬं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः

शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्व्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्व्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

दृते दृꣳह मा । ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासं ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्तेऽ अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्तेऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽ अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

नमस्तेऽ अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

यतो यतः समीहसे ततो नोऽ अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ २२ ॥

सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

तच्चक्षुर्द्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २४ ॥

॥ इति विश्वशांतियाग स्वाहाकार मंत्राः समाप्ताः ॥

विष्णुयागादि-यज्ञों में चतुर्वेदोक्तादि मन्त्रों द्वारा योगिनी का स्थापन तथा महारुद्रादि यज्ञों में चतुर्वेदोक्त मंत्रों द्वारा वास्तु पूजन

विष्णुयागादि यज्ञों में चतुर्वेदोक्तादि मंत्रों द्वारा

योगिनी का स्थापन

(१) ऋग्वेद—तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥१॥ यजुर्वेद—तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पति धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २ ॥ (सामवेद) आवो राजा । नमध्व । रस्यरुद्राम् । हो । ता । राम । स । त्ययजाइम् । रोदसीयोः अग्निपु । रा । तनयि । त्नोरचित्तात् । हिरण्य । रू ॥ पा ३ मव । सा ३४३ इ ॥ ३ ॥ अथर्ववेद—ईशां वो मरुतो देव अदित्यो ब्रह्मणस्पतिः । ईशां वा इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः । ईशां व ऋषयश्च क्रूरमित्रेषु समीक्षयन्त्रदिते अर्बुदे तव ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेऽत्र गजानने त्वं सिन्दूरवर्णे गणपेऽनुकूले । रक्ताम्बरे रक्तविलोचने च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ गजाननायै नमः—गजाननामावा० ॥ ५ ॥

(२) ऋग्वेद—ब्रह्मा देवानां पदवी कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम् । श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥१॥ यजुर्वेद—आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २ ॥ (सा०) ब्रह्मा । ब्रा २३ ह्मा । जयानं प्रथमं पुरस्तात् ॥ विसाइ । वा २३ इसी । मतः सुरुचोवेन आवः । सबू । सा२३ बू । न्धिया उपमा अस्य वा इष्ठाः ॥ सताः । सा २३ ताः । चयोनिमसतश्च वा इ वा ३४३ । ओ २३४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ अथर्ववेद—ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं

पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽउपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ ४ ॥ आवाहये सिंहमुखी सुरूपां सर्वार्तिहन्त्री सकलार्थदात्रीम् । विद्युन्निभां सर्वजगत्प्रणम्यां रक्षाध्वरं नो वरदे नमस्ते ॥ सिंहमुख्यै॰ सिंहमुखीमा॰ ॥ ५ ॥

(३) ऋग्वेद—महाँऽ इन्द्रो य ऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥ यजुर्वेद—महाँऽ इन्द्रो य ऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयाम गृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैषते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ २ ॥ (सा.) इन्द्र हाउ । इा हो इ । पर्वता बृहता रथा २ इना २३ वा ३ । ऊ ३४ पा ॥ वामीर्हा उ । हा हो इ । इष आ वह तूँ सुवा २ इरा २३ वा ३ । ऊ ३४ पर ॥ वीत् हाउ । हा हो इ । हव्यानध्वरे सुदा २ इ वा २ उवा ३ । ऊ ३४ पा ॥ वर्द्धा हाउ । हा हो । थांगीर्भिरिडयामदा २० ता २ उवा ३ ॥ ऊ ३२३४ पा ॥ ३ ॥ (अ॰) महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वा वृधे ॥४॥ एह्येहि गृध्रास्य इहामरेशि प्रचण्डदैतेय विमर्दने त्वम् । कुरु प्रसाद मयि देवि मातः पूजा त्वदर्था रचित्वा परेयन् ॥ गृध्रास्यायै॰ गृध्रास्यामा॰॥५॥

(४) ऋग्वेद—कद्रुद्राय प्रचेतसे मीढुष्टमाय तव्यसे । वो चेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥ यजुर्वेद—सद्योजातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः । अस्य होतुः प्रदिश्यतस्य वाचि स्वाहा कृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ २ ॥ (सा.) तद्वोहोवा ॥ गाया २ सुताइसा २३४ चा । पुरुहूता । यसात्वा १ ना २ इ ॥ शंयत् । हा । औ ३ होई । गा २२८ वा इ ॥ ना २ गा २३४ औ हो वा ॥ ए ३ । किने २३४५ ॥ ३ ॥ (अ.) देवस्य सवितुः सर्वे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः । शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवा ॥४॥ आवाहये त्वामिह काकतुण्डे यज्ञे चतुर्वेद भवे सदैव । कोष्ठे तुरीये वसति विधस्त्व पूजां तवाहं विदधे विनम्रः ॥ काकतुण्डिकायै॰ काकतुण्डिकामा॰ ॥ ५ ॥

(५) (ऋ॰) वपुर्न तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् । मर्तेष्वन्यद् दो ह से पीपाय सकृच्छुक्र दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

(य०) आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्। परिवृङ्धि हरसा माभिमᳬस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ २ ॥ (सा०) उदुत्यम्। ओहाइ। जा। तवे २ दा २३४ साम्। देवं वहा। हीकेता २३४ वाः। दा २३४ शें हाइ। वा इश्वायसू। र्याम्। औ २३ हो वा। हो ५ इ॥ डा॥ ३॥ (अ०) कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः। तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥ यह्येहि यज्ञेऽत्र सरोजहस्ते कल्याणदे रक्तमुखोष्ट्रग्रीवे। कलापदण्डाम्बधरे प्रसीद विशाध्वरं नः सततं शुभाय॥ उष्ट्रग्रीवायै० उष्ट्रग्रीवामा०॥ ५॥

(६) (ऋ.) इतो वा सातिमीहसे दिवो वा पार्थिवा दधि। इन्द्रं महो वा रजसः॥ १॥ (य.) स्वर्णं घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्णं शुक्रः स्वाहा स्वर्णं ज्योतिः स्वाहा स्वर्णं सूर्यः स्वाहा ॥ २॥ (सा.) अबोधिया॥ ग्नाइः समिधाजना २ नाम्। प्रताइधे २ नूम्। इवायती मुषासम्। यह्वाई ३ वा। प्रवा २ यामुज्जिहानाः॥ प्रभाना २३ वाः। सस्रते नाकमच्छ। इडा २३ भा ३४३। ओ २३४५ इ। डा॥ ३॥ (अ.) कुहू देवीं सुकृतं विद्मनायसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि। सानो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद्ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यऽम्॥ ४॥ एह्येहि यज्ञेऽत्र सुवाजिग्रीवे विशालनेत्रे भव भूतिकर्त्री। देवान्समावाहय हव्यकामान् गृहाण पूजां सततं नमस्ते। हयग्रीवायै० हयग्रीवामा०॥ ५॥

(७) (ऋ०) श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदया मसि॥ १॥ (य.) सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२॥ (सा.) तु चेतुना। यता २२ त्सु २३४ नाः द्राधीया २ ३४ यूः जीवासा २ इ। जादी २ त्यासा २ः॥ समहसा २ः। कृणो ३ ता ५। ना २३४५ ॥३॥ (अ.) वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि स नो हिरण्यजाः शंखः कृशनः पा त्वं हसः॥ ४॥ एह्येहि वाराहि विशालरूपे

द्रष्ट्राग्रलीलोद्धृतभूमिके च। पीताम्बरे देवि नमोऽस्तु तुभ्यं गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ वाराह्यै० वाराहीमा० ॥ ५ ॥

(८) (ऋ०) गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी। सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ १ ॥ (य०) भार्यै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारठं सर्वेभ्यो लोकेभ्यऽ उपसेक्तारम ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ २ ॥ (सा०) आतू ओ हो। आतू ओ हो न इन्द्र वृत्रा २३४ हान्। अस्माकमर्द्धम्। आगा २३ ही। गाही ॥ २ ॥ माहा २० माही २३ ॥ भिरू २३४ वा। ता ५ इमो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्। यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मण तमृषि तं सुमेधाम्। आवाहयेऽह शरभाननां त्वां समस्तसंसार विधानदक्षाम्। देवाधिदवेशि परेशि नित्यं गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ शरभाननायै० शरभाननामा० ॥ ५ ॥

(९) (ऋ०) उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह। प्रादुर्भूतो ऽस्मि राष्ट्रेस्मिन् कीर्तिमृद्धि ददातु मे ॥ ॥ (य०) जिह्वा म भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः। मोदाः प्रमोदाऽ अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ २ ॥ (सा०) हा। वा ३ हा २ हा। ओ २३४ सौ ॥ आरत्ता २३४ सो। माधारापा २३४ ॥ आपो वा २३४ सा। नो अर्षा २३४ सी ॥ आरत्ना २३४ धाः। योनीमा २३४ त्तों। स्यासीदा २३४ सी ॥ ऊत्सोदा २३४ इवो। हा इरण्या २३४ याः। हा। हा। वो ३ हा ३। हा ओ २३४ वा। हा ३४। ओ हो वा ॥ ए ३। अतिविश्वानि- दुरितातरमा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याऽयते। दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ । उलूकिके त्वामिह भावयेहं काश्मीरपाटीरविलेपनाढ्याम्। नानाविधालङ्करणोपपन्नां यज्ञे समागन्तुमशेषवन्द्याम्। उलूकिकायै० उलूकिकामा० ॥ ५ ॥

(१०) (ऋ०) अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य १ः स्मयमानासो अग्निम्। घृतस्य धारासमिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ १ ॥ (य०) हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा पप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाह निविष्टाय स्वाहो पविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वलगते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा सठं० हानाय स्वाहा॰स्थिताय स्वाहायनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) अश्वी अश्वी ॥ रथीसु ३ रूपा १ ई २ त् । गोमा॑ यदि । द्राते १ साखा २ । श्वात्रा २ भाजा २ । वयसास चतेसा २३ दा ॥ चन्द्राइर्या १ ती ३ ॥ सा २३ भा ३ मृ० । ३४३ पो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत् । तत्ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥ ४ ॥ आवाहयेहं शिवपूर्विकां त्वां रावां महारावजितत्रिलोकीम् । कुरु प्रसादं मम विष्णुयज्ञे गृह्णीष्व पूजां करुणामये च । शिवरावायै० शिवारावामा० ॥ ५ ॥

(११) (ऋ०) अद्यो चित्रू चित् तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र । नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृल्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ १ ॥ य०) अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥ (सा०) पिबासुतस्य रसिनोमत्स्वाहा ३ ॥ ना २ः । इन्द्रा २ गोमता २३- । हा उ । आपिर्नो २ वो । धिसावमा २ । दिये वृधा २३ । हा उ ॥ अस्मार्ठ० अवाँ २३ । हा ॥ तु ते ३ हो २ । या २३४ औ होवा ॥ धियऊ २३४५ ॥ ३ । (अ०) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ अदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ४ ॥ मयूरिके त्वं निश मेऽध्वरेऽस्मिन् लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावे । मयूररूपे त्रिदशैकवन्द्ये ममाध्वरं पाहि वरे नमस्ते । मयूरिकायै० मयूरिकामा० ॥ ५ ॥

(१२) (ऋ०) यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरा-गिरा च दक्षसे । प्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ १॥ (य०) पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्तऽ इह स्मसि॥ २ ॥ (सा०) यज्ञा-यज्ञा । होइ । वा ३ ग्नय ए ३४॥ हिया॥ गिरा गिरा । चा २ दक्षसाइ। प्रप्रावयाम्। अमृतं जा ३। त वे २ दा २३४ साम। प्रियम्मित्राम् नशठं० सिषाम् । एहिया । औ हो २३४५ इ० ॥ डा ॥ ३॥ (अ० विश्वजित् कल्याण्यैऽ मा परि देहि । कल्याणि द्विपाच्च सर्वं नो रक्ष चतुष्पाद्यच्च नः स्वम् । ४॥ आवाहयेहं कमलासनस्थां विशालनेत्रां विकटाननां त्वाम् । सर्वज्ञकल्पां बहुमानयुक्तामागत्य रक्षां कुरु सुप्रसन्ने ॥ विकटा-ननायै० विकटाननामा० ॥ ५ ॥

(१३) ऋ० ईले द्यावा पृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्म सुरुचं यामन्नि-ष्टये । याभिर्भरे कार मशाय जिन्वथ स्ताभिरुषु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥ (य०) वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूपऽ आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥ २ ॥ (सा०) भूमिः । (त्रिः) । अन्तरिक्षम् (त्रिः) द्यौः । (द्विः द्य । ३४ । औहो वा ॥ ए ३ । भूताया २३४५ ॥३॥ (अ०) प्रोष्ठेशयास्तल्पेशया नारीर्या वह्यशीवरीः । स्त्रियो याः पुण्यगन्धस्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामष्ट-वक्त्रां कल्याणदात्री शुभकारिणीं भो प्रसादये त्वां बहुचाटुकारैर्गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ अष्टवक्त्रायै० अष्टवक्त्रामा० ॥ ५ ॥

(१४) (ऋ) अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सा दयादिह ॥ १ ॥ (य०) अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः । मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २ ॥ सा० अग्नीठ० होतारं मन्ये । दा २३४ । स्वन्तं वसोः सू नुम । सहसोजा ३ तावे १ दासा २ म् । विप्रन्नजा ३ तावे १ दासा २ म् । य ऊर्ध्वया ३ सूवध्वारा २ः । देवो देवा ३ चाया १ कृपा ५ । घृतास्यविभ्राष्टिमनुशु । क्राशो १ चिपारः । आजूह्वा ३ ना ३ ॥ स्या २३ सा ३ । पा ३४५ इषो ६ हाइ ॥ ३ । (अ०) सोमेन पूर्ण कलशं बिभर्षि त्वस्य रूपाणं जनिता पशूनाम् । शिवास्ते सन्तु प्रजन्वऽ इह या

इमान्य १ स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ४ ॥ आवाहये सुन्दरि कोटराक्षि त्वामत्र यज्ञे भव तापहारिणि। राजप्रजावंशकरी प्रसन्नां ममाध्वरं पाहि वरे नमस्ते ॥ कोटराक्ष्यै० कोटराक्षीमा० ॥ ५ ॥

(१५) (ऋ०) उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। यथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १ ॥ (य०) इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराच के ॥ २ ॥ (सा०) यदाकदा च माहा ३ ॥ ढूषा २ इस्तोता २। जराइ। तर्मतियः। आदिद्वन्दा। ओहों २ हां ३ हा ३ इ। तादा २ रू २३४ णाम्। विपागिरा ॥ धर्त्तारव्या। ओहो ३ हा ३। हाइ ॥ व्रातानाम्। इडा २३ भा २४३ ओ२३४५ इ॥ डा॥ ३॥ (अ०) अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीमधुना पयः ॥ ४ ॥ (ह्यहि कुब्जे दुरितौघ नाशिनि सदानुकूले कलहंसजामिनि। मां पाहि दीनं शरणागतं च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ कुब्जायै० कुब्जामा०। ५ ॥

(१६) (ऋ०) यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः सं पिबते यमः। अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥ १ ॥ (य०) यमाय त्वा सूयस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि ॥ २ ॥ (सा०) आ २ याम्। अयायम्। औ ३ हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २। ना के सुपार्णमुपयात्पतन्ताम्। पतन्तम्। औ ३ हो ३ इ। आ इ। ऊ २ ॥ आ २ याम्। अयायम्। औ ३ हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २। हृदावेनांतो अभ्यचाक्षतत्वा। क्षतत्वो ३। हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २ ॥ आ २ याम्। अयायम्। औ ३ हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २। हिरण्यपाक्षं वरुणास्यदूताम्। स्यदूतम् औ ३ हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २ ॥ आ २ याम्। अयायम्। औ ३ हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २। यमस्य योनौ शकुनां भुरण्युम्। औ ३ हो ३ इ। आ २ इ। ऊ २। आ २ याम्। अयायम् औ ३ हो ३ इ। आ ३ इ। ऊ २। वाहा ३१३ वा २३ ॥ ए ३। दिवम्। ए ३। दिवा २३४५ म ॥ ३ ॥ (अ०) हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्। गौरमी-

मेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्क्रुणोन्मातवाउ ॥ ४ ॥ एह्येहि दुर्गे विकटाक्षिनाम्नि प्रभावयास्मानिह यज्ञकामान्। संसारदुःखौघविनाशिके च रक्षाध्वरं नो वरदे नमस्ते ॥ विकटाक्ष्यै० विकटाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(१७) (ऋ०) गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति पाति देवानां जनिमान्यद्भुतः। गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत ॥ १ ॥ (य०) यमेन दत्तं त्रितऽ एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमोऽअध्यतिष्ठत्। गन्धर्वोऽ अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥ (सा०) गायन्तित्वा गायत्रिण आ ॥ अर्चन्त्यर्कमर्का २३ इणाः। ब्रह्माणस्त्वा २ हो १ इ। शतक्रा २३ ता ३। उद्व ँ शमिवया १ इमो ३ रे॥ उद्व ँ शा २३४ मौ ॥ वाया ३१ उवा ४। उप। मा २ इरो ३५ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) स्त्रियः सतीस्तां उमे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः। कवियंः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ ४ ॥ एह्येहि शुष्कोदरि सुन्दरि त्वं समस्तदैतेयनिषदायत्रि। आगत्य नः पालय दुःखितांश्च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ शुष्कोदर्यै० शुष्कोदरीमा० ॥ ५ ॥

(१८) (ऋ०) मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्। मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥ (य०) मित्रस्य चर्षणी धृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ २ ॥ (सा०) आनोमित्रा। वरुणा ३। औ होवा ३२४ ॥ घृतैर्गव्यू तमु। क्षता ३ म्। औ होवा २ ॥ माध्वारजा ँ सिसू ३। औ होवा २। क्रतु। इडा २३ भा २४३। औ २३४५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ०) मित्रावरुणयोर्भागस्थ अपां शुक्रमापो देवी वर्चो अस्मासु धत्त। प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं ललदाद्य जह्वानाम्नी सुदेवीं चपलां सुनेत्राम्। नानाविधास्वादनतत्परां च गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ ललजिह्वायै ललजिह्वामा० ॥ ५ ॥

१९ (ऋ०) दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन् त्सिन्धून् पर्वतांञ्छर्यणावतः ॥ १ ॥ (य०) अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं

दृ ठं० ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृ ठं ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽ उपदधामि चित्तस्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यद्ध्वम् ॥ २॥ (सा०) अग्निन्दूताम्। वृणीमहाइ। होतारा २३० वी। वाद्वेदसाम्। अस्य या २३ ज्ञा। आ। औ ३ होवा। स्यासुक्रतुम्। इडा २३ भा ३४३। ओ २३४५ इ॥ डा॥ ३॥ (अ०) आगन् रात्री संगमनी वसूनामूर्ज पुष्टंवस्वावेशयनी अमावास्याऽयै हविषा विधे मोर्ज दुहाना पयसा न आगन् ॥ ४॥ आवाहयेऽहं भवती श्वदंष्ट्रानाम्नी शनो मूर्तिधरां महोग्राम्। अत्युग्ररूपां महदाननां च विशाधरं नो वरदे नमस्ते ॥ श्वदंष्ट्रयै० श्वदंष्ट्रामा० ॥ ५॥

(२०) (ऋ०) भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया व सप्रथाः। अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १॥ (य०) भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ २॥ (सा०) अग्निरौहोवाहाई। वृत्राणि। जाङ्घा ३ नात्। औ हो ३ वा ३। द्रविणा २३४ स्युः। ओ इ वो इपन्यया २। समाये ३। धा २ः घू २३४ औ हो वा। क्रयाहुता २३४५ः॥ ३॥ (अ०) सिन्धुपत्नी सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य १ स्यन। दत्त नस्तस्य भेषजं तेना वो भुनजाम है॥ ४॥ आवाहये त्वामिह वानराननां प्रियां हनूमद्विदुषो महामते। देवि त्वमस्माःपरिपाहि नित्यं श्रीरामभक्ते सततं शिवाय॥ वानराननायै० वानराननामा०॥ ५॥

(२१) (ऋ०) रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य १ क्षभिः। विश्वा अधि श्रितोऽधित॥ १॥ (य०) सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तमान तेजसा दिश उद् दृ ठं ह॥ २॥ (सा०) नित्वामग्नाइ॥ मनुर्दा २३४ धाइ। ज्योतिर्जना। या शश्वाता २ इ। दी। दाइ। थक ण्वाऋतजा ३। त ऊ रक्षा २३४

इता ॥ थन्नमस्या २३ ॥ ता २ इ कृ २३४ औ होवा ॥ ष्टा २३४ याः ॥ ३ ॥ (अ०) तद्भद्राः समगच्छन्तवशा देष्ट्रपथो स्वधा । अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिषास्त हिरण्यये ॥ ४ ॥ एह्येहि ऋक्षाक्षिभवानि नित्यं विनाशयास्माकमध समन्तात् । हीनप्रबोधं शरणागतं मां त्रायस्व कल्याणि परे नमस्ते ॥ ऋक्षाक्ष्यै० ऋक्षाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(२२) (ऋ०) उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञारते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥ (य०) पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽती तृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ॥ २ ॥ सा० यद्वाऊ २३ विश्पतिः शिताः ॥ सुप्रीतोमनुषोविशे ॥ विश्वा इदा ३२ मीः ॥ प्रतिरक्षा । सिसेधता । औ ३ होवा हो ५ इ ॥ डा ॥ ३ ॥ (अ०) पूर्णं नारि प्र भर कुंभमेतं घृतस्य धारा ममृतेन संभृताम् । इमां पातृनतेमृना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिहकेकराक्षीं शुभाननां दिव्यगुणार्णवां चे । शमुद्रजातां परमार्थदात्रीं त्रायस्व हेभार्गवनन्दनेऽस्मान् ॥ केकराक्ष्यै० केकराक्षीमा० ॥ ५ ॥

(२३) (ऋ०) क्षुत्पिसामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिं च सर्वान्निर्नुद मे गृहात् ॥ १ ॥ (य०) या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ता भिचाकशीहि ॥ २ ॥ (सा०) चन्द्रमाअप्सुवा ॥ तरा । सुपर्णो धावते दा २३ इ वी । न वा २३ होइ । हिरण्यनेमयः परं विन्द । तिविद्यता २३ । वित्तठं० होइ । म आ २३ हों ॥ स्यरो २३ । दा २ सा १३४ औ होवा ॥ ऊ३२३४ पा ॥ ३ ॥ (अ० , उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय । अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिह देवपुत्री बृहन्मुखीं किन्नरगीयमानाम् । केयूरमाणिक्यविभूषिताङ्गी मनोरमां सवसुखादिधात्रीम् ॥ बृहत्तुण्डायै० बृहन्तुण्डामा० ॥ ५ ॥

(२४) (ऋ०) तमिद् धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते। येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ १ ॥ (य०) वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतान्नः सुराधसः ॥ २ ॥ (सा०) आवोराजा। नमध्व। रस्य। रुद्राम्। हो। ता। राम्। स। त्य य जा ३ म्। रोदसीयोः। अग्नि पु। रा। तनयि। त्नोरचित्तात् ॥ हिरण्य। रू॥ पा ३ मव। सा २४३ इ। का ३ र्णू ५ ध्वी ६५६ म् ॥ ३ ॥ (३ अ०) वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि। सन्ते हिरण्यजा शंखः कृशनः पात्वं हसः ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेऽसुरराज पुत्रि सुराप्रिये सर्वभयापहे त्वम्। सुरप्रिये योगिनि दिव्य देहे नमामि मातस्तव पादपङ्कजम् ॥ सुरप्रियायै० सुरप्रियामा ॥५॥

(२५) (ऋ) स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा। इमा हव्या जुषन्त नः ॥ १ ॥ (य०) हꣳस शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ २ ॥ (सा०) हा उ हो वा। (त्रिः)। परात्परमैरय। ता। (द्वेत्रिः)। यज्जायथाः। अपूर्विया। अपूर्वा २३४ या ॥ मघवन् वृ। त्रहत्याया त्रहत्यायाः ३ : त्राहत्या २३४ या। तत्पृथिवीम्। अप्राथयाः। अप्राथया ३:। अप्राथा २३४ या॥ तदस्तभ्नाः। उतोदिवाम्। उतोदिवा ३ म्। अतोदा २३४ इवाम्। हा उहोवा। (त्रिः) परात्परमैरय। ता। (द्वेत्रिः)। परात्परमै रय। त। औ हो वाहा ०। वा॥ ए। ते जोधर्मः संक्रीडन्ते वायुगोपास्ते जस्वतीमरुद्भिर्भुवनानि चक्रुः ॥ ३ ॥ (अ०) ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ॥ तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ ४ ॥ एह्येहि मातस्सुकपालहस्ते जगल्लये शङ्करवल्लभे च। वृषाधिरूढे ललिते सुरेशे गृहाण पूजां वरदे नमस्ते। कपालहस्तायै० कपालहस्तामा० ॥५॥

(२६) (ऋ०) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ (य०) सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णबन्धुरस्तुतो यासि वशाँऽ अनु यो जान्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥ (सा०) अभाइमाहे।

(त्रिः) । चर्षणं धृतं मघवाना ३ मुक्था १ याऽ २ म् । इन्द्रंजरो बृहती- रभ्या ३ नूषा १ ता २ ॥ वावृधानं पुरुहूतं सु ३ वार्क्ता १ इ भी २ः॥ अमर्त्यं जरमाणं दि ३ वो इदा १ इवे २ । अभामाऽहे । (द्विः) । अभा २३ इ । मा २ । हा २३४ । औहोवा । सर्पसुवा २३४५ः ॥ ३ ॥ (अ०) बृहद्ग्रावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् । तस्मै स्वप्नाय दधु राधि पत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वऽरानशानाः ॥ ४ ॥ एह्येहि रक्ताक्षि सुचारुपे क्रोधेन दूरीकृतदानवेन्द्रे । यज्ञे समागच्छ सुमध्यमे त्वं गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ रक्ताक्ष्यै० रक्ताक्षीमा० ॥ ५ ॥

(२७) (ऋ०) परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः । न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ १ ॥ (य०) देवीरापोऽ अपान्नपाद्यो ऊर्मिर्हविष्य इन्द्रियावान्मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भागस्थ स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) ए २ । विदामघवन्विदाः ॥ गातुमनुशं सिषः । दाइशा ३१ उवा २३ । ई ३४ डा ॥ ए २ । शिक्षाशचीनाम्पताइ ॥ पूर्वीणाम्पूरू २ । बसा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा । आभिष्ट्वमभा २ ह । ष्टिभिरा ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । स्वर्न्नां शूरः । हाउ १ उवा २३ ई ३४ डा । प्रा । चेतन- प्रचेतया ॥ ईन्द्रा ॥ द्युम्नायना २ इषाद् । इडा ॥ ईन्द्रा ॥ द्युम्नायना २ इषाइ । अथा ॥ ईन्द्रा ॥ द्युम्नायना २ इषाइ । इडा । एवाहिशक्रो राये वा जायना १ ज्रो ३ वाः । शविष्ठवज्रिन्ना ३ । जासाइ ॥ मं हिष्ठ- वज्रिन्ना ३२ हो ॥ जासा ३१ उवा २३ ॥ इट् इडा २३४५ ॥ आया ॥ हिपिबमा २ त्सुवा ॥ इडा २३४५ ॥ ए २ । विदाराये सुवीरियाम् । भुवो वाजानाम्पतिर्वशा २ं । अनुआ ३१ उवा २३ । ई ३४ डा ॥ ए २ । मं हिष्ठवज्रिनृञ्जसाइ । यऽ शविष्ठः शूरा २ । ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥ योमं हिष्ठा मघो २ । ना ३१ उवा २३ । ई ३४ डा ॥ अं शुर्नशोचा २ इः । हा ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । चाइ । हित्वो अभिनोनया ॥ ईन्द्रो ॥ विदेतमू २ स्तु हाइ ॥ इडा ॥ ईन्द्रो ॥ विदेतमू २ स्तुदा इ । आथा ॥ ईन्द्रो । विदेतमू २ स्तुहाइ । इडा । ईशेहि शक्रस्तमूतये वाह १

मा ३ हाइ । जेतारमपरा ३ । जाइताम् । सनः स्वर्षदता २३ होइ ॥ द्वाइषा ३१ उवा २३ ॥ इट् इडा २३४५ ॥ क्रातूः छन्द ऋता २ ग्बृहात् इडा २३४५ ॥ ए २ इन्द्रन्धनस्य सातयाइ ॥ हवामहे जेतारमपरा २ । जितमा ३१ उवा २३ । ई २४ डा ॥ ए २ । सनः स्वर्षदहिद्विषा ॥ सानः स्वर्षदता २ इ । द्विष आ ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । पूर्वस्ययत्त आ २ । द्विव आ ३१ उवा २३ । ई ३४ डा । अ॑ शु र्म दाया २ । हाउ १ उवा २३ । ई ३४ डा । सू । म्नआधेहिनो व सा उ ॥ पत्तीः वशिष्ठशा २ स्यताइ । इडा पूर्त्तीः । शविष्ठशा २ स्य ताइ । अथा ॥ पूर्त्तीः ॥ शविष्ठशा २ स्यताइ । इडा । वशीहिशक्रा नूनन्तन्नव्य॑ सा १ न्या २ साइ । प्रभोजनस्यवा ३ ॥ श्राहान् ॥ समर्येषुब्रवा २३ हो इ ॥ वाहा ३१ उवा २३ ॥ इटा इडा २३४५ ॥ शूरो ॥ योगोषुगा २ च्छा ताइ । इडा ॥ सात्वा सुशेवो २ द्वयूः ॥ इडा २३४५ ॥ ३ ॥ आइवा हियेवा २३४५ । होइ । हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥ आइवा ॥ हियग्ना २३४५ इ । होइ । हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥ आइवा ॥ हिपूषा २३४५ न् । होइ ॥ हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई २४ डा ॥ आइवा ॥ हि देवा २३४५ः । होइ ॥ हो । हो । वाहा ३१ उवा २३ ॥ ई ३४ डा ॥ (अ०) शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः । तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्तासामेका वि पापातानु घोषम् ॥ ४ ॥ एह्येहि मातश्शुकि योगिनि त्वमस्मत्सवे ब्रह्ममहेशवन्द्ये । परात्परेशे विहिताङ्गरागे गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ शुक्वर्ये० शुक्कीमा० ॥ ५ ॥

(२८) (ऋ०) रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म । शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिव स रिष पातु नक्तम् ॥ १ ॥ (य०) प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ २ ॥ (सा०) तक्षद्यदी । हो २३४५ इ ॥ मनसोवेनतः । वा २३४५ क ॥ ज्येष्ठस्यवा ३१२३४ । मन्द्युक्षोरनी ॥ का १३४५ इ ॥ आदाइमाया ३१२३४ न् । वरमावावशा । ना २३४५ः ॥ जुष्टम्पता ३१२३४ इम् । कलशेगा ५ वः । इ । दाउ ॥ वा ॥ ३ ॥ (अ०) रक्षोहणं

वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रतिष्ठमुप यामि शर्म। शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥४॥ हेश्येनि मातर्दह दुःखजातं यज्ञे समागत्य चतुर्भुजे नः। अनन्यभावाः करुणार्द्रचित्ताः कल्याण-काङ्क्षा भवतीं नमामः ॥ श्येन्यै० शेनीमा० ॥४॥

(२९) (ऋ०) समुद्रज्येष्ठा सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनि-विशमानाः। इन्द्रो यावज्री वृषणो रराद ता आपो देवी रिह मामवन्तु ॥१॥ (य०) द्वारो देवी देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्तेऽ अग्नेः। अरु व्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥२॥ (सा०) हाउहा उहाउ। आयु-श्चक्षुर्ज्योति। औ होवा। ईया। उदुत्तमं वरुणपाशमा ३३ स्मात्। अवाधमंविमध्यमं श्रथा २३ या ॥ अथानित्यव्रतेबयंता २३॥ अनागसो अदियेसिया २३ मा ३। हाउहा उहाहा आयुश्चक्षुर्ज्योतिः औ होवा ई २। या २३४। औहोवा॥ ई २३४५ ॥३॥ (अ०) आपो अग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना अमृता ऋतज्ञाः। यासु देवीष्वधि देव आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ प्रसादमाधाय कपोतकाख्ये देवि त्वमागच्छ ममाध्वरेऽत्र। समस्तदेवा सुरवन्दवनीये गृहाण पूजां वरदे नमस्ते॥ कपोतिकायै० कपोतिकामा० ॥५॥

(३०) (ऋ०) पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसुः सन्। उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधो नः ॥१॥ (य०) देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नारिरसि ॥२॥ (सा०) एतमुस्यम्। ए ५। मदा॥ च्युताम्। सहस्र-धारं बृषभं दिवोदू २३ हाम्॥ वा इश्वा २ वासू २३॥ निषो २३४ वा। श्वा५ तो ६ हाइ॥ ३॥ (अथ०) सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवी धारयन्ति॥ सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोति ॥४॥ आवाहये माशकरां प्रकेतः प्रियां प्रतीच्यामुपलब्धवासाम्। जलाधिनाथां स्फटिकप्रभां त्वां गृहाण मेऽर्चां शिवमातनुष्व॥ पाशहस्तायै० ॥५॥

(३१) (ऋ०) पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्नि जिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ १ ॥ (य०) भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २ ॥ (सा०) प्रत्यग्ने। हरसाहरा ६ ए। शृणाहि वा २ इ। श्वता ३४५ः। पा ३४ री ॥ यातुधानस्य रक्षसो ३ ॥ वा २३ लाम् ॥ नियुब्जवो ३३४ वा ॥ री २३४ याम् ॥ ३ ॥ (अ०) य एवं विदुषेऽदत्वाथान्येभ्यो ददद्दशाम्। दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सह देवता ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिह दण्डहस्तां यमेप्सितामञ्जनसन्निभां च। विशालवक्षःस्थलरुद्ररूपां गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ दण्डहस्तायै० दण्डहस्तामा० ॥ ५ ॥

(३२) (ऋ०) महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती। यथा चित्रो अबोधयः सत्वश्रवसि वाप्ये सुजाते अश्व सूनृते ॥ १ ॥ (य०) कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूयऽ इन्नु ते दानन्देवस्य पृच्यतऽ आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥ (सा०) शचीभिर्ना ५ः शचीवसू ॥ दिवानक्तं दिशस्यताम्। मावा २ म्। रातिरुपदसत्कदाचना। आस्मा २ त्। रातिः कदो २३४ वा। चा ५ नो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) शिवास्त एका अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः। तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन्तासामेका वि पपातानुघोषणम् ॥ ४ ॥ एह्येहि देवि त्वमिह प्रचण्डे प्रचण्डनोर्दण्डसुरारिहस्ते। सुरासुरैरर्चितपादपद्मे विशाध्वरं नो वरदे नतस्ते ॥ प्रचण्डायै० प्रचण्डामा० ॥ ५ ॥

(३३) (ऋ०) मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिष। वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥१॥ य०) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳬंसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २ ॥ (सा०) हा ३ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐहि २। (त्रिः)। ऐहिहा ३ वाक्। (त्रिः)। हा हाउ। (त्रिः) हाउ (३) वा। प्रजातोकमजीकनेहस। इहा २३४५। हा उ (३)। वाऽघहहहह। (त्रिः)। एही २। (त्रिः)।

एहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः) आयाउ। (त्रिः)। अग्निरस्मिजन्मना ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो ३॥ (हाउ ३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐहिहा उवाक्। (त्रिः) हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। इहप्रजायमिहरयिं रराणो हस। इहा २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः) एहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः) आयाउ। (त्रिः)। जातवेदाओ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो ३। हाउ (३) वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। ऐहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। रायस्पोषायसुक्रुतायभूयसेहस। इहा २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। एही २। (त्रिः) ऐहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। आयाउ। (त्रिः)। घृतं मे चक्षुरमतं म आसानो ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो ३। हाउ (३) वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐही २। (त्रिः)। ऐहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३ वा। आगःवाममिदं बृहद्धस्। इहा। २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐही २। (त्रिः) ऐहिहाउवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। आहाउ। (त्रिः)। त्रिधातुरर्कोरकसोविमाना ॐ ३ हो। २ इया। ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो ३॥ हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः)। ऐहिहाउवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। इदं वामहिद बृहद्धस्। इहा। २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐही २। (त्रिः) ऐहिहाउवाक्। (त्रिः)। आया उ। (त्रिः) अजस्त्रं ज्योता इरो ३ हो। हा। हा २ इया। ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो ३॥ हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः) ऐहिहाउवाक्। (त्रिः) हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। चराचराय बृहत इदं धाममिदं बृहद्धस। इहा २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही ५। (त्रिः। ऐहिहाउवाक् (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः) आयाउ। त्रिः। हविरस्मिसर्वाभी ३ हो। हा २ इया ॐ ३ हो। हा २ इया। ॐ ३ हो २।

हाउ (३) । वाग्घहहहह (त्रिः) । ऐहिहाउवाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा ॥ एयशोक्रान्भूतमततनत्प्रजाउसमचूकुपत्प-शुम्योहस् । इहा २३४५ ॥३॥ (अ० मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा ना वक्ष्यतः । मा नोः हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वऽ रुद्र मा रीरिषो नः ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिह चण्डविक्रमाकज्ञान-तामिस्रनिराकरीं च । संसारपङ्केऽत्र निमज्जनानानुद्धारयन्तीं भवतीं नमामि ॥ चण्डविक्रमायै० चण्डविक्रमा० ॥ ५ ॥

(३४) (ऋ०) अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ (य०) इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरन-मीवाऽ अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंस० सो ध्रुवा ऽअस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२॥ (सा०) अग्न आयाहि । वा ५ इ तथा इ । गृणानो हव्यदा १ ता ३ ये । निहोता २३४ सा । त्सा २३४ इषो ६ हा इ ॥ ३ ॥ (अ०) शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ ४ ॥ शिशुघ्नि देवि त्वमिहाद्य धत्स्व रतिं मयि त्वच्चरणाब्जभाजि । शिशूनवास्मत्कुलजान्सबन्धून् गृहाण पूजां वरदे नमस्ते । शिशुघ्न्यै० शिशुघ्नीमा० ॥ ५ ॥

(३५) (ऋ०) द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठतु । नेष्ट्रा-दृतुभिरिष्यत ॥ १ ॥ (य०) देवी द्यावा पृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यास देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ २ ॥ (सा०) अयन्त आ ॥ द्रसोमो । होवा ३ होइ । निपूतो आ ३ । धीबहा २३४ इषी ॥ आइहीमस्या २३ ॥ द्वा २ वा २३४ ७ होवा ॥ पी २३४ वा ॥ ३ ॥ (अ०) अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यरुत विश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनो भा ॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिहपापहन्त्रीं कन्यापचित्या सुमुखीं प्रसन्नाम् । मुक्तिप्रदां भक्तजने-ष्टदात्रीं गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ पापहन्त्र्यै० पापहन्त्रीमा० ॥ ५ ॥

(३६) (ऋ०) असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा

न आयुः रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन तन्वं वर्धयस्व ॥ १ ॥ (य०) विश्वानि देव सवितर्दुरितानिपरासुव । यद्भद्रं तन्नऽ आसुव ॥ २ ॥ (सा.) असाविस्वामा अरुषो वृषाह । राइः ॥ राजेवदस्मो अभिगा अचिक्र । द त् । पुनानो वारमत्येष्यव्य । याम् ॥ श्येनो नयो निघृत । वा तमा ३ । सार दा २३४ ॐ हो वा ॥ ए ३ । दिवी २३४५ ॥ ३ ॥ (अ.) आनो यहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टतिरुप पिबा सुशिप्रिन्नन्धसः ॥४॥ एह्येहि कालित्वमिहाध्वरे मे वेदज्ञसम्पादितकार्यजाते । विष्णुप्रिये सर्वनुते गृहाण पूजां यथावत्कृपया सुरेशि ॥ काल्यै० कालीमा० ॥ ५ ॥

(३७) (ऋ०) रपद्गन्धवीरप्याह च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः । इष्टस्य मध्ये अदितिनि धातु नो भ्रा ानो ज्येष्ठः प्रथमो वि वो चति ॥ १ ॥ (य०) असुन्वन्तम यजमानमिच्छस्ते नस्ये त्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ २ ॥ (सा० वे त्याहिनिर्ऋतीनाम् । वाज्रहस्तपरिवृ । जाम् ॥ अहर । हाः । शुन्ध्युः परि । पदा ३ मा ५ इवा ६५६ ॥ ३ ॥ (अ०) वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे । ४ ॥ आवाहये त्वां रुधिरं पिबन्तीं देवासुराणां भयदां ज्वलन्तीम् । विशालनेत्रा परिपूर्णचन्द्रविम्बाननां चन्दनचर्चिताङ्गीम् ॥ रुधिरपायिन्यै० रुधिरपायिन्यै० रुधिरपायिनीमा० ॥ ५ ॥

(३८) (ऋ०) सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः । अस्य होतुः प्रदिस्पृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥ १ ॥ (य३) अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शकरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥ (सा०) अग्निस्तिग्मेन शोचिषा इह । य ऽ सद्विश्वं न्यत्रिणां २ म् । इहा ॥ अग्निर्नोव सता १ इ । इहा ३ । रा २३४ यो ६ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञा यो अश्विनोश्चमसो देवयानः । तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति ॥ ४ ॥ वसाधयां त्वामिह भावयेऽहं सामन्त यज्ञ

प्रभया समानाम्। यज्ञैः स्तुतां यज्ञवसाधयां च पाहि त्वमम्बे भवतीं नमामि ।। वसा धयायै० वसाधयामा० ।। ५ ।।

(३९) (ऋ०) कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ।। १ ।। (य.) बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समनावगत्य। इषुधिः संकाः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रभूतः ।। २ ।। (सा.) चित्रा ६ ए ।। ए ३१२३४। शिशोस्तरुणस्य वक्षथः। क्षयः। हिहिहियो ऽ६ हा उ। ए ३१२३४। नयो मातरावन्वेति धातवे। तवे। हिहिहिया ६ हा उ ।। ए ३१२३४। अनूवायदजीजनः धाचिदा। हिहिहिया ६ हा उ। ए १२३४। ववक्षत्सद्यो महिदूतियंचरन्। हिहिहिया ६ हा उ। वा ।। ए ३। ऋतून ।। ३ ।। (अ.) सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढिनः ।। ४ ।। आवाहये त्वामिह गर्भभक्षां देवीं सुमायां भयदां समन्तात्। स्ववंशरक्षार्थमिहार्चयामि गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते ।। गर्भभक्षायै० गर्भभक्षामा० ।। ५ ।।

(४०) (ऋ०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताल्हि विमृधो नुदस्व ।। १ ।। (य०) नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतोत ऽइषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ।। २ ।। (सा.) मृज्यमाना ।। सुहस्तया ३। सामू ३ द्राइवा। चमिन्वसा ३ इ। रायो ३९ पाइशा। गवहुला ३ म्। पूरू २ स्पृ २३४ हाम्। पवका। ना। औ ३ हो। भियो २३४ वा। षा ५ सो ६ हाइ ।।३।। (अ.) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्थात्परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रन्ताढि वि मृधो नुदस्व ।। ४ ।। आवाहयेहं शवहस्तकां त्वां सर्वस्य लोकस्य भयप्रदात्रीम्। कपालखट्वाङ्गधरां सुघूम्रां भजामि देवीं कुलवृद्धिहेतो ।। शवहस्तायै० शवहस्तामा० ।। ५ ।।

(४१) (ऋ०) सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता

यजत्रैः। रुजत् दृल्हानि ददुस्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ १ ॥ (य०) ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिन च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ (सा० हाउ (३) आहा। (त्रिः) हा ओवा। (त्रिः)। ऊ २। (त्रिः) ओ २। (त्रिः। हा वाक्। (त्रिः)। आयुर्यन्। (त्रिः) ए आयुः। (त्रिः)। आयुः। (त्रिः)। वयाः। (त्रिः)। वयः। इन्द्रन्नरोनेमधिताहवा २ न्ताइ ॥ यत्पार्यायुनजते धिया २ स्ता ॥ शूरोनृषाताश्रवसश्चका २ माइ। आगोमतिव्रजेभजातुवा २ न्नः। हाउ (३)। अनेहा। (त्रिः)। हा ओवा। (त्रिः)। ऊ २। (त्रिः)। ओ २। (त्रिः) हाउवाक्। (त्रिः)। आयुर्यन। (त्रिः)। ए आयुः। त्रिः। आयुः। (त्रिः) वयाः। (द्विः)। वा २। या २२४। औ हावा ॥ ए आयुर्द्धा अस्मभ्यं वर्चोधादेवेभ्या २३४५ः॥ ३ ॥ (अ०) सत्यजितं शपथयावनीं सहमानां पुनः सराम्। शर्वाः समहयाषवीरितो नः पारयादिति ॥ ४ ॥ आवाहये यज्ञ इहान्त्रमालीं पाञ्चकत्रीं सुरसानुरूपाम्। गृहाण पूजां श्रुतिमन्त्रजुष्टां कृपाकटाक्षं कुरु मय्यधीने ॥ आन्त्रमालिन्यै० आन्त्रमालिनीमा० ॥ ५ ॥

(४२) (ऋ०) द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृणिरे। देवेषु ता वनामहे ॥ १ ॥ (य०) ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यताᳬं संविदानेऽ आर्त्नीऽ इमे विष्पुरन्तीऽ अमित्रान् ॥ २ ॥ (सा०) देवो ३ वो ३ द्रविणोदाः॥ पूर्णा विवष्ट्वासिचम्। उद्वा १ सिञ्च २। ध्वमुपवा पृणध्वम। आदि द्वोदे २। व ओहते। इडा २३ भा ३४। ओ २ ४५ इ॥ डा॥ ३ ॥ (अ०) अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकीतुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः॥ ४ ॥ आवाहये त्वामिह स्थूलकेशीं शिरोरुहाच्छादितसर्वदेहाम्। स्काम्बरां नक्तचरीं सुवक्त्रां ध्यायेऽध्वरेस्मिन्मनसा च वाचा ॥ स्थूलकेश्यै० स्थूलकेशीमा० ॥ ५ ॥

(४३) (ऋ०) ईले द्यावा पृथिवी पूर्वचित्त येऽग्नि घर्मं सुरचं

यामन्निष्टये। याभिर्भरे कारमशाय जिन्वथ स्तनाभिरूषु ऊतिभिराश्वना गतम् ॥ ॥ (य०) वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूपऽ आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥ २ ॥ (सा०) भूमिः। त्रिः)। अन्तरिक्षम् । (त्रिः) द्यौः । (द्विः । द्या ३४ । औ हो वा ॥ ए ३ । भूताया २३ ४५ ॥ ३ ॥ (अ०) भूतिर्मातादितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशक्त्या नः द्यौर्न पिता पित्र्याच्छं भवाति जामि मृत्वा माव पत्सि लोकात् ॥ ४ ॥ महोदरे त्वामिह भावयामि कुक्षि बृहन्तं दधतीं सुवेषाम् । यज्ञे समागच्छ विधेहि भद्रं गृहाण पूजां प्रियदे नमस्ते ॥ बृहत्कुक्ष्यै० बृहत्कुक्षीमा० ॥ ५ ॥

४४) (ऋ०) अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने । धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे ॥ १ ॥ (य०) पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥ २ ॥ (सा०) अतीहिमा ॥ न्युषा २ वा इ णा २ म् । सुषुवाँ सा २ म् । होइ । ऊपै १ राया २ ॥ अस्यराता २३ उ ॥ सूर ता २३४ औ होवा ॥ पी २३४ वा ॥ ३ ॥ (अ०) कालोऽमूँ दिवमजनयत्काल इमाः पृथिवीरुत । कालेह भूतं भव्यं चेषितं ह्विवितिष्ठते ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्पास्य इह द्विजिह्वे द्विजह्वतादोषमधारयन्तीम् । शिवप्रिये जन्हुसुताप्रिये च नमामि त्वां देवि बहुप्रकोपाम् ॥ सर्पास्यायै० सर्पास्यामा० ॥ ५ ॥

(४५) (ऋ०) तवाहं सोम शरण सख्य इन्द्रो दिवे दिवे । पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥ १ ॥ (य०) अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽ आज्यठं. संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णा मा त्वावक्रमिष वसुमीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णोः स्थानमसीतऽ इन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽ ध्वरऽ आस्थात् ॥ २ ॥ (सा०) तवाहँ सो । मरा २ रणा । रण । सख्य इन्द्रो दिवा २ इदिवाह । दिवं । पुरूणिवभ्रो निचरन्तिभा २ मवा । अव ॥ परिधी रतितँ इहा २३ इ । आ २ इ । हा २३४ । ओ हो वा । औ हो वा ॥ ऊ ६२३४ पा ॥ ३॥ (अ०) सोम राजन्संज्ञानमा वपेभ्यः सुब्राह्मणा यतमे स्त्वोपसीदान् । ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मोदने सुहवा

जोहवीमि ।। ४ ।। आवाहये प्रेतवहां यमप्रियां यमस्य दूतीं सुविशाल-रूपाम् । सुदण्डहस्तां महिषाधिरूढां भजामि देवीं कुलवृद्धिहेतोः ।। प्रेत-वाहिन्यै० प्रेतवाहिनीमा० ।। ५ ।।

(४६) (ऋ०) ते आचरन्ती सभनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे । अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आत्नी इमे विस्फुरन्ती अमित्रान् ।। १ ।। (य०) ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे । अप शत्रून्विध्यताᳬ संविदानेऽ आत्नींऽ इमे विस्फुरन्तीऽ अमित्रान् ।। २ ।। (सा०) अपामिवे दूर्मयस्तौ । होवाहाइ ।। तुराणा २३४ । हाहोइ । प्रमनी । षाः । ईरते ३ । सोमम । छा ३४ । हाहोई । नमस्य । ताइः । उपचा ३ । यन्तितशम् । चा ३४ । हा होइ ।। आच वि । शा । तियुश । तोरुश । ता ३४ मृ । हाहा ३४ । और होवा । वा ३ डा २३४५ः ।। ३ ।। (अ०) अपो देवीर्मधुमतर्घृतरचुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि । यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयोणाम ।। ४ ।। आवाहये शूककरां सुभीमां कामप्रियां घोरमुखीं कृशाङ्गीम् । यज्ञे समागत्य शुभं कुरुष्व गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते ।। दन्तशूकरायै० दन्तशूककरामा० ।। ५ ।।

(४७) (ऋ०) बलित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि । प्रया भूमि प्रवत्वति मह्ना जिन्नोषि महिनि ।। १ ।। (य०) मही द्यौः पृथिवी च न ऽइमं यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतां नो भरीमभिः ।। २ ।। (सा०) यज्ञायज्ञा ।। वो अग्नयाः इ । गिरा २ गिरा ३४ । हा हो ३ । चादक्षा ५३४ साइ । प्रभा २ वयममृत जा । ता । वे १ दासा २ मृ ।। प्रियम्मित्राम् । नशं सिषाम् ।। एहिया । ओ हौ हो २३४५ इ ।। डा ।।३ । (अ०) यामृषया भूतकृतो मेधां म धाविनो विदुः । तया मामद्य मेध-याग्ने मेधाविनं कुरु ।। ४ ।। आवाहये दैत्यसुतां सुभीमां क्रौञ्चीं महहासन-सन्निविष्टाम् । भयस्य हन्त्रीं द्विजसङ्घजुष्टां वने वसन्ती वनदेवतां त्वाम् ।। क्रौञ्चयै० क्रौञ्चीमा० ।। ५ ।।

(४८) (ऋ०) देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या। भगस्य रातिमीमहे॥ १॥ (य०) उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि च नो मयि धेहि। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपति भगाय देवाय त्वा सवित्रे॥ २॥ (सा०) तत्सवितुवरेणियोम्। भर्गो देवस्य धीमा हीऽ २। धियो यो नः प्रचो १२१२। हुम् आ २ दायो आ २३४५॥ ३॥ (अ०) सविता प्रस वाना-मधिपतिः स मावतु अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन्कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्त्यामस्यामाकूत्यामस्यामा शिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा॥ ४॥ आवाहयेऽहं मृगशीर्षनाम्नो नक्षत्रबोधामुडुमध्यमंस्थाम्। चन्द्र-प्रियां चन्द्रनिभाननां च संभावयास्मानिह योगिनि त्वम्॥ मृगशीर्षायै० मृगशीर्षामा०॥ ५॥

(४९) (ऋ०) एको बहूनामसि मन्यवीलितो विशं विशं युधये स शिशाधि। अकृत्तरुक त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मह॥ १॥ (य०) आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे॥ २॥ (सा०) अग्नाइमृडा २ऽ। मह॑ं आ २३४ सो। अथ आदा २ इ। वयुञ्जी १२३४ नाम्। इयेथ वा २३। हिरा ३ सा ५ दा ६५६ म॥ ३॥ (अ०) यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितरं वा जिहिंसिम। अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्॥ ४॥ वृषानने शङ्करवल्लभे त्वममत्रेहि यज्ञे विधि गौरवाय। त्वामर्चये देवि कृपां विधेहि गृहाण पूजां वरदे नमस्ते। वृषाननायै० वृषाननामा०॥ ५॥

(५०) (ऋ०) अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्र दानाय चोदय। वा तं विष्णुं सरस्वतीं सादतारं च वाजिनम्॥१॥ (य०) कार्षिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्याऽउन्नयामि। समापोऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः॥ २॥ (सा०) अग्नाइमृडा ऽ। मह॑ं आ २३४ सी। अय आदा २ ३। वयुञ्जा २३४ नाम्। इयेथ वा २३। हिरा ३ सा ५ दा ६५६ म्॥ ३॥ (अ०) धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम्। रुद्रस्ये षुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमोयतमस्यां दिशी ३ तः॥ ४॥ एह्यहि

व्यात्तास्य इहैव सद्यो मदीययज्ञे रुचिराङ्गजाते। सुमूर्धजे पद्मसमाननेत्रे ममाध्वरं योगिनि पाहि नित्यम् ॥ व्यात्तास्यायै० व्यात्तास्यामा० ॥५॥

(५१) (ऋ०) आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि। वहन्तु त्वा हरयो मद्यञ्चमाङ्गूषमच्छा त वस मदाया ॥ १ ॥ (य०) त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ २ ॥ (सा०) परीतोषिञ्चता सुताम् ॥ सोमोय उ। तम् ̐ हवाइः दावाओ २३४ वा ऊ ३४ पा। न्वा ̐ योनर्यो अप्सुवन्ता १ रा ॥ सुषावाऽ २३ सो ॥ मामद्रिभिः। इडा २१ भा ३४३। औ २३४५ इ ॥ डा। ३ ॥ (अ० उत्तमो अस्योषधीनां तव वृक्षा उपस्तयः उपस्तिरस्तु सो ३ स्माकं यो अस्मां अभिदासति ॥४॥ एह्येहि यज्ञे मम देवि धूम्रनिश्वसके योगिनि चारुदन्ते। गोरोचना कुङ्कुमशोभिताङ्गे प्रसीद मातः कमलारुये त्वम् ॥ धूम्रनिश्वासायै० धूम्रनिश्वासाभा० ॥ ५ ॥

(५२) (ऋ०) पद्मानने पद्मविपद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि। विश्वप्रिये विष्णु मनोऽनुकूले त्वत्पादपद्मं मयि संनिधत्स्व ॥ १ ॥ (य०) श्रीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥ २ ॥ (सा०) हा। वो ३ हा। वो ३ हा ३। हा। ओ २३४ वा। हा इ। पूमाना २ ४ः सो। भाधा राप २३४॥ आपो वा २ ४ सा अर्षा २ ४ सी। आरत्ना २३४ धाः। योनी मा २ ४ र्ता। स्यासीदा २३४ सी॥ ऊत्सोदा २३४ इ वो। हा इ रण्या २३४ याः। हा। वो ३ हा। वो ३ हा ३। हा। ओ २३४ वा। हा २४। औ हो वा ॥ ए ३। अति विश्वानि दुरिता तरमा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) देवी देव्यामधि जाता पृथिव्यामस्योषधे। तां त्वा नितत्नि केशेभ्यो दृहणाय खनामसि ॥ ४ ॥ व्योमैकपादाध्र्वदृशं सुरेशीमावाहये योगिनि-दिव्यदेहाम्। प्रसीद मातः ककलायताक्ष विशाध्वरं नो वरद नमस्ते ॥ व्योमैकचरणाध्र्वदृशे० व्योमैकचरणाध्वदृशमा० ॥ ५ ॥

(५३) (ऋ०) आष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन् । देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ॥ १ ॥ (य०) विष्णो ररराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि । वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २ ॥ (सा० औ हो इत्वमिन्द्र प्रस्तूर्त्तिषु ३२ ॥ अमाइवा इश्वाः । आसिस्था २३४ र्द्धाः ॥ श्री ॥ आशस्तिहा जनितावृ । त्रतू २३ रसाइ ॥ श्री ॥ तूवा २३० तुर्या ॥ तरी हो ३ । हुम्मा २ । स्था २ तो ६४ हाइ ॥ ३ ॥ (अ०) उदगातां भगवती विचतो नाम तार के । विक्षेत्रियस्य मुञ्चतामधमं पाशमुत्तमम् ॥ ४ । आवाहये तापनि योगिनि त्वां यज्ञे द्विषत्तापकरीशुभाङ्गरीम् । सर्वार्थसम्पत्तिकरी प्रणाश्यां विघ्नव्रजं नाशय नो नमस्तु ॥ तापिन्ये० तापिनीमा० । ५ ॥

(५४) ऋ०) त्वष्टा दुहित्रे वइन्पु कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति । यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥ १ ॥ (य०) ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयठं सुधातु दक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत् ॥ २ ॥ (सा०) हा उ (त्रिः)। इमाः । इमाः । प्रजा । (त्रिः) प्रजापते । हो इ (द्वि द्विः) ॥ प्रजापते । हा ३१३ । वा २ ॥ ए । हृदयम् । (द्वि द्विः) ए । हृदया ३१३ । वा २॥ प्रजारूष मजीजने ३ । इट् इडा २३४५ ।।३।। (अ० प्रजापतिः सलिलादा समुद्रादाप ईरयन्नु दधिमर्दयाति । प्रप्यायतां वृष्णो अश्वस्य रेतोऽर्वाङ्ग तेन स्तनयित्नुने हि ॥ ४ ॥ आवाहये शोषणि दृष्टिमस्मिन् यज्ञे समागत्य कुरु प्रसादम् । रसाध्वरं पालय नोरिनीते गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ शोषणीदृष्ट्यै० शोषणीदृष्टिमा० ॥ ५ ॥

(५५ ऋ) कस्य नून कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥ (य०) आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो दब्धासो ऽअपरीतासः उद्भिदः । देवानो यथा सदमिद् वृधेऽ असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ २ ॥ (सा०) हा ० (३) । वाग्वहहहह । (त्रिः) । एहि २ । ऐही २ । (त्रिः) । ऐहिहा ३ वाक् । (त्रिः) । हा हाउ । (त्रिः) । हाउ (३) वा ।

प्रजातोकलजीजनेहस। इहा २३४५। हा उ (३)। बाऽघहहहह। (त्रिः)। एही २। (त्रिः)। ऐहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ (त्रिः)। आयाउ। त्रिः)। अभिरसिमजन्मना ओ ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हो ३॥ (हाउ ३) वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐहिहाउवाक्। (त्रिः) हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। इहप्रजायमिहरयि रराणो हस। इहा २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः) एहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः आयाउ। (त्रिः)। जातवेदाओ ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हा। हा २ इया। ओ ३ हो ३। हाउ (३)। वाग्हहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः)। ऐहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। रायस्पोषायसुकृतायभूयसेसा। इहा २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। एही २। (त्रिः)। ऐहिहा उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। आयाउ। (त्रिः)। धृतं मे चक्षु मृतं म असानो ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हो ३। हाउ (३) वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐनी २। (त्रिः) ऐहिहाउवाक्। (त्रिः) हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। आगस्वामर्मिदं बृहद्धस्। इहा २४४५। हाउ (३)। बाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐही २। (त्रिः)। ऐहिह उवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। विधातुरर्कोरजसोविमाना ओ ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हो। हा १ इया। ओ २ हो ३॥ हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः)। ऐही २। (त्रिः)। ऐहिहाउवाक्। (त्रिः)। हाहाउ। (-त्रिः)। हाउ (३) वा। इदं वाममिदं बृहद्धम्। इहा २३४५। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः)। ऐही २। (त्रिः)। ऐहिहाउवाक्। (त्रिः)। आया उ। (त्रिः)। अजेस्रं ज्योता इरी ३ हो। हा हा २ इया। ओ ३ हो। हा २ इया। ओ ३ हो ३॥ हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः) ऐहिहाउवाक्। (त्रिः) हाहाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा। चराचराय बृहत इदं वाममिदं बृहद्धस। इहा २३४६। हाउ (३)। वाग्घहहहह। (त्रिः) ऐही २। (त्रिः)। ऐहिहाउवाक्।

(त्रिः)। हाहाउ। (त्रिः)। आयाउ। (त्रिः)। हविरस्मिसर्वामी ३ हो। हा २ इया। औ ३ हो। हा २ इया। औ ३ हो १। हाउ (३)। वाग्वहहहह। (त्रिः)। ऐहिहाउवाक्। (त्रिः)। हा हाउ। (त्रिः)। हाउ (३) वा ॥ एयशोक्कान्भूतमततनत्प्रजाउसमचूकुपत्पशुभ्योहस्। इहा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो ऽदब्धासो ऽअपरीतासऽ उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधेऽ असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ ३ ॥ आवाहये कोटरि योगिनि त्वां यज्ञेऽत्र देवार्चितपादपद्मे। आगत्य रक्षां कुरु सप्ततन्तोर्गृहाण पूजां वरदे नमस्ते॥ कोटर्यै० कोटरीमा० ॥ ५ ॥

(५६) (ऋ०) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ (य०) एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म एकविꣳ. शतिश्च म एकविꣳ. शतिश्च मे त्रयोविꣳ. शतिश्च मे त्रयोविꣳ शतिश्च मे पञ्चविꣳ. शतिश्च मे पञ्चविꣳ. शतिश्च मे सप्तविꣳ. शतिश्च मे सप्तविꣳ शतिश्च मे नवविꣳ. शतिश्च मे नवविꣳ. शतिश्च म एकत्रिꣳ. शच्च म एकत्रिꣳ. शच्च मे त्रयत्रिꣳ. शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥ (सा० , श्रायन्तइवसू ४ रायाम् ॥ बिश्वा २ इ दिन्द्रा २। स्यभा २ क्षता। वासू निजातो जनिमा। नियोजा १ सा २ ॥ प्रतिभागन्न दी २ धिकाः। प्रा २३ ती ॥ भागान्न ३ दा। हुम्। धिमा ३ः। ओ २३४ वा ॥ हे २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४॥ एह्येहि मातर्वरदानदक्षे विशाम्बरे दैत्यविनाशकारिणि। त्वां स्थूलनासां विनता नमामः प्रसीद धन्ये प्रणतार्तिहन्त्रि ॥ स्थूलनासिकायै० स्थूलनासिकामा० ॥ ५ ॥

(५७) (ऋ०) ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्

॥ १ ॥ (य०) ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्मऽ इयर्ति प्रभृतो मेऽ अद्रिः। आशासते प्रतियन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ २ ॥ (सा०) ब्रह्मा। ब्रा २३ ह्मा। जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात् ॥ विसाइ। वा २३ इसी। मतः सुरुचौ वेन आवः ॥ सबू। सा २३ बू। ध्निया इपमा यस्य वा इष्ठाः॥ सताः सा २३ ताः। चयोनिमसतश्च वाइवा ३४३ः। ओ १३४५ इ। डा ॥ ३ ॥ (अ०) तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपा रः। सलिला मातरिश्वा। वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतस्य ॥ ४ ॥ आवाहये भूषणभूषिताङ्गी विद्युत्प्रभां भासितदिव्यदेहाम्। विशाम्बरे देवि गृहाण पूजां देवैर्नुते ते वरदे नमोऽस्तु ॥ विद्युत्प्रभायै० विद्युत्प्रभामा० ॥ ५ ॥

५८) (ऋ०) नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन् परिवीतो योनौ सीददन्त। अतः संगृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयतेन्द्हन् ॥ ४ ॥ (य०) असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽ अधि भूम्याम्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ २ ॥ (सा०) अग्नेयू ३ ऽङ्क्षाहियेतवा। अश्वासोदेवसाधा २३ः। अरं वा २३ हो। तियाशा २३ वा ३४३ः। ओ २३४५ इ ॥ ३ ॥ (अ०) वरणो वरयाता अयं देवो वनस्पतिः। यक्ष्मो यो अस्मिन्नविष्टत्वमु देवा अवीवरन् ॥ ४ ॥ नमाम आह्लादमयीं बलाढ्यां बलाकिकास्यां वरदां शुचिस्मिताम्। प्रविश्य यागेऽत्र मनोरथान्न विधेहि सत्यानखिलान् नमस्ते ॥ बलाकास्यायै० बलाकास्यामा० ॥ ५ ॥

(५९) हंशः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोषसत्। नृषद् वरस दृतसद् व्योमसद् जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ १ ॥ (य०) सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽ आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ २ ॥ (सा०) अभाइमाहे। (त्रिः)। चर्षणीधृतं मघवाना ३ मुक्था १ याऽ २ म्। इन्द्रं गिरो बृहतीरभ्या ३ नूषा १ ता २ ॥ वा बृधानं पुरुहूत ँ सु ३ वाक्तों १ इ भी २ः ॥ अमर्त्यं जरमाꣳदि ३ वा इदा १ ईवे २। अभाइमाहे। (द्विः)। अभा २३ उ। मा २। हा २३४।

औ हो वा ।। सर्पंसु वा २३४५ः ।। ३ ।। (अ०) गन्धर्वाप्सरसः सर्पान्देवान्पुण्यजनान् पितॄन् दृष्टा न दृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ।। ४ ।। मार्जारिके त्वामिह चिन्तयामि मार्जाररूपे निखिला घहन्त्रीम् । संभावये योगिनि दिव्यरूपे गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ।। मार्जार्यै० मार्जारीमा० ।। ५ ।।

(६०) (ऋ०) दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि । अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ।।१।। (य०) या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी । तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचा कशीहि ।। २ ।। (सा०) ओग्राइ । आयाही ३ वी इ तोया २ इ । तोया २ इ । गृणानोइ । व्यदातोया २ इ । तोया २ इ । नाइ होताया २२ । त्सा २ यि । वा २३४ औ हो वा । ही २३४ षी ।।३।। (अ०) मृगो न भीमः कुचक्षे गिरिष्ठाः परावत आ जगन्थात्परस्याः । सृकंसंशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ता ढ़िवि मृधो नुदस्व ।। ४ ।। आवाहयेहं कटपूतानां त्वां समस्तविघ्नौघविनाशदक्षाम् । वृन्दारकैर्वन्दितपादपद्मां नमामि देवी परमार्तिहन्त्रीम् ।। कटपूतनायै ० कटपूतनामा०।।५।

(६१) ऋ०) अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।। १ ।। (य०) देवी द्यावा पृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ।। २ ।। (सा०) वृषा हाउ ।। पा २३४ वा । स्वधारा २३४ या । मा २३४ या । मा २३४ रू । त्वा २३४ ता इ । चामत्सा २३४ रा ।। वा इश्वादवा २३ ।। ना २ ओ १३४ औ हो वा ।। जा २३४ सा ।। ३ ।। (अ०) वृषेन्द्रस्य वृषादिवो वृषा पृथिव्या अयम् । वृषा विश्वस्य भूततस्य त्वमेक वृषो भव ।। ४ ।। अट्टाटहासामिह भीमरूपां राकाप्रभामान्त्रयुतां ज्वलन्तीम् । सर्वस्व लोकस्य विषादहन्त्रीमावाहयेस्मिन् विततेऽध्वरेऽहम् ।। अट्टाट्टहासायै० अट्टाट्टहासामा० ।। ५ ।।

(६२) (ऋ०) न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् । हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥ १ ॥ (य०) इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाठं. सुरे स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) हाउ (३) । ऊ २ वदः । (त्रिः) वदोवदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः) । यमो हाउ । त्रिः) । पितरो हाउ । त्रिः । भारुण्डो हाउ । त्रिः) । इम् ँ स्तोमाम् । अर्हतेजा । ताबेदसहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) । ऊ २ वदः । (त्रिः) ! वदो- वदः । (त्रः) । वदोनृम्णानिपुराणः । (त्रिः) । यमोहाउ । (त्रिः) । पितरो हाउ । (त्रिः) । भारुण्डो हाउ । (त्रिः) रथामिवा । संमाहेमा । मानीषयहोये ३ । हाये होये ॥ हाउ (३) । ऊ २ वदा । (त्रिः) । वदोवदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः । यमोहाउ (त्रिः) । पितरो हाउ । (त्रिः) भारुण्डो हाउ । (त्रिः) । भद्राहिना । प्रमातिरा । स्यास् ँ सदहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) ऊ २ वदः (त्रिः) वदो- वदः । (त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रिः) । यमोहाउ । (त्रिः) । पितरो हाउ । (त्रिः) । भारुण्डो हाउ । (त्रिः) । अग्नाइसख्याइ । माराइषामा । वायन्तवहोये ३ । होये होये ॥ हाउ (३) । ऊ २ वदः । (त्रिः) । वदोवदः । त्रिः) । वदोनृम्णानिपुरायः । (त्रि) । पितरो- हाउ । (त्रिः) पितरो हाउ । भारुण्डोहाउ । (द्विः) । भारुण्डो ३ हाउ । वा ॥ ए । वदोवदोनृम्णानिपुराययमोवः पितरो भारुण्डा । ए । वदोवदो नृम्णानिपुरावयमोवः पितरो भारुण्डः । ए । व । वदोवदोनृम्णानिपुराय- यमोव पितरो भारुण्डा २३४५ ॥ ३ ॥ (अ०) अदितिर्मादित्यैः प्रती- च्यादिशः पातुबाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि । लोक कृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ४ ॥ कामाक्षिसंसारमलापहन्त्रि विद्युत्प्रभाचन्द्रनिभानने च । एह्येहि यज्ञे सकलार्थदात्रि गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ कामाक्षायै० कामाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(६३) (ऋ०) मानः समस्य दूढाय १ः परिद्वेषसो अंहति ऊर्मिनं नावमा वधीत् ॥ १ ॥ (य०) वृष्णऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रं मे देहि

स्वाहा वृषणऽ ऊर्म्मिरसि राष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मै देहि वृषसेनोसि राष्ट्रदाराष्ट्रम्मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदाराष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥ (सा०) अहा । वो ३ हा । वो ३ हा । सनादग्नाइ । मृणसि । आतुधानान् । नत्वारक्षा । सी ३ पृत । नासुजिग्यूः ॥ अनुदहा । सहमू । रान्कयादाः । अहा । वो ३ हा । वो ३ हा । माता इहेल्याः । मुक्षत । दा ३४३ इ । वी ३ या ६५६ः ॥ ३ ॥ (अ०) अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याऽयते । दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ४ ॥ मृगाक्षिवालार्कनिभामिह त्वामावाहये ज्ञानमयीं सुशीलाम् । ब्रह्मादिदेवार्चितपादयुग्मामागत्य यज्ञेऽत्र विधेहि सव्यम् ॥ मृगाक्ष्यै० मृगाक्षीमा० ॥ ५ ॥

(६४) (ऋ०) भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ १ ॥ (य०) मायै दार्वाहारं प्रभायाऽ अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारꣳ सर्वेभ्यो लोकेभ्यऽ उप सेक्तारमवऽ ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूली प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ २ ॥ (सा०) वृषासोमा ॥ द्युमा २ आसा २ इ । धृतादेषा ३ हा ३ इ । वार्षं व्रा २३४ ताः ॥ वृषाधर्मा ३ ॥ इ ३ या ॥ णा इदध्रिषे । इडा २३ भा ३४३ । ओ २३४५ इ । डा ॥ ३ ॥ (अ०) अभाशर्वौ मृदन्तं माभि यातं भूतपती नमो वाम् । प्रति हितामायतां मा विस्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥४॥ आवाहयेऽहं मृगलोचनां त्वामाकण्ठदीर्घनयनां मणिकुण्डलढ्याम् । मन्दस्मितां मृगमदोज्वलभालदेहां विशाध्वरं नो वरदे नमस्ते ॥ मृगलोचनायै० मृगलोचनामा० ॥ ५ ॥

॥ इति विष्णुयागादि यज्ञों के चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा योगिनी का

स्थापन समाप्तः ॥

महारुद्रादि यज्ञों में चतुर्वेदोक्त मंत्रों द्वारा वास्तु पूजन

शक्करीछन्दः द्यौरादयो लिङ्गोक्ता देवता, दृते दृ९ं० हेत्यस्य ब्राह्मी अनुष्टुप्छन्दः आशीर्देवता दृते दृ९ं० हेत्यस्य उष्णिक्छन्दः आशीर्देवता नमस्ते हरसे इत्यस्य दध्यङाथर्वणऋषिः बृहतीछन्दः अग्निर्देवता, नमस्ते अस्तु यतो यतः इत्यनयोरनुष्टुप्छन्दः आद्याविद्युत्स्तनयित्नुर्भगवान देवता, द्वितीयायाः महावीरो देवता, सुमित्रियान इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वणऋषिः प्राजापत्या जगतीछन्दः आपोदेवता तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वणऋषिः अक्षरातीतपुर उष्णिक्छन्दः सूर्योदेवता शान्त्यर्थ होमे विनियोगः।

ध्यानम्—

ॐ शुद्धस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रकम् ।
गङ्गाधरं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् ॥ १ ॥
नीलग्रीवं शशाङ्काङ्कं नागयज्ञोपवीतिनम् ।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च वरेण्यमभयप्रदम् ॥ २ ॥
कमण्डल्वक्षसूत्राभ्यामन्वितं शूलपाणिनम् ।
ज्वलन्तं पिङ्गलजटाजूटमुद्योतकारिणम् ॥ ३ ॥
अमृतेनाप्लुतं हृष्टमुमादेहार्धधारिणम् ।
दिव्यसिंहासनासीनं दिव्यभोगसमन्वितम् ॥ ४ ॥
दिग्देवतासमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥ ५ ॥

सर्वव्यापिनमीशानं रुद्रं वै विश्वरूपिणम् ।
एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यक् ततो यजनमारभेत् ॥ ६ ॥

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः । मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥ इति मन्त्रावृत्या आग्नेयादितश्चतुरः शङ्कून् संरोप्य—अग्निभ्योऽप्यथ सर्वेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः । बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् १ नैर्ऋत्यां० २ वायव्याधिपतिश्चैव वायव्यां ये० ३ ईशान्याधिपतिश्चैव ईशान्यां ये च रा० ४ ।

ततः—सुवर्णशलाकया प्रागग्रा उदक्संस्था नवरेखाः कुर्यात्—लक्ष्म्यै नमः १ यशोवत्यै० २ कान्तायै० ३ सुप्रियायै० ४ विमलायै० ५ शिवायै० ६ सुभगायै० ७ सुमत्यै० ८ इडायै० ९ तत उदगग्रा प्राक्संस्था नवरेखा कार्याः—धान्यायै० १ प्राणायै० २ विशालायै० ३ स्थिरायै० ४ भद्रायै० ५ जयायै० ६ निशायै० ७ विरजायै० ९ ।

१—(ऋ०) अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन् भागमीमहे ॥ १ ॥ (य०) तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २ (सा०) अभि त्वा शूर नो नुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्तुषः ॥ ३ ॥ (अ०) ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥ ४ ॥ समाह्वयन्तं शिखिनं महोज्वलं मेषाधिरूढं सुरराज वन्दितम् । त्रिशूलहस्तं वरदे महेशं भजामि देवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ शिखिने नमः शिखिनमावाहयामि स्थापयामि ॥ ५ ॥

२—(ऋ०) पर्जन्याय प्रगायत दिवस्पुत्राय मीढुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥ (य०) शं नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः । शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽ अभिवर्षतु ॥ २ ॥ (सा०) महाँ इन्द्रो य ओजसा

पर्जन्यो वृष्टिमां इव । स्योमैवत्सस्य वावृधे ॥ ३ ॥ (अ०) विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् । विद्मोष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥ ४ ॥ एह्येहि जीमूतसुधाप्रमृष्टे चराचरैः सेवितधर्ममूर्ते । पवित्रदेवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि नमस्ते । पर्जन्या० पर्जन्यमा० ॥ ५ ॥

३—(ऋ०) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ १ ॥ (य०) मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ २ ॥ (सा०) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ३ ॥ (अ०) प्रब्लीनो मृदितः शयां हतो ३ मित्रो न्यर्बुदे । अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ ४ ॥ एह्येहि देवेश जयन्तसूनो शच्याः सदा सर्वसुरैकसेव्य । पीठेऽत्र यज्ञेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भवन्नमस्ते । जयन्ताय० जयन्तमा० ॥ ५ ॥

४—(ऋ० रमध्वं वर्चसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः । प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽ वस्यु र्ह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ १ ॥ (य०) आयात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः । वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ २ ॥ (सा० इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्यापुनजते धियस्ताः । शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आगोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ ३ ॥ (अ०) आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तू तु जानस्तुविष्मान् । प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ ४ ॥ एह्येहि वृत्रघ्न गजाधिरूढ सहस्रनेत्र त्रिदशवराज । शचीपते शक्र सुरेश नित्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ कुलिशायुधा० कुलिशायुधमा० ॥ ५ ॥

५—(ऋ०) त्यान् नु क्षत्रियां अव आदित्यान् याचिषा महे सुमृडीका अभिष्टये ॥ १ ॥ (य०) बण्महाँ २॥ असि सूर्य बडादित्य महाँ २॥ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव

महाँ २।।ऽ असि ॥ २ ॥ (सा०) बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनिष्टम महा देव महाँ असि ॥ ३ ॥ (अ०) यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्वाकृत हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ४ ॥ (बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥) समाह्वयन्तं द्विभुजं दिनेशं सप्ताश्ववाहं द्युमणिं ग्रहेशम्। सिन्दूरवर्णं प्रतिभावसंभत्रं भजामि सूर्यं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ सूर्याय० सूर्यमा० ॥ ५ ॥

६—(ऋ०) सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोम अधि श्रितः ॥ १ ॥ (य०) व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते। २ ॥ (सा०) सत्यमित्था वृषेदसि वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता। वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावतिः श्रुतः ॥ ३ ॥ (अ०) को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवाऽधि पूरुषे। को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवाऽधि पूरुषे। को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम् ॥ ४ ॥ एह्येहि सत्येश महामहेश दुष्टान्तकृत्स्वच्छसुधर्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भवन्नमस्ते ॥ सत्याय० सत्यमा० ॥ ५ ॥

७—(ऋ०) अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे ॥ १ ॥ (य०) आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवास्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ २ ॥ सा०) यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि किण्वेषु चा पिब ॥ ३ ॥ (अ०) आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्रऽधियेह्या नः। श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय। ४ ॥ समाह्वयन्तं द्विभुजं भृशं हि नीलोत्पलाभासविशालनेत्रम् नीलाद्रिवर्णं प्रतिभावभासं भजामि देवं कुलवृद्धि हेतोः ॥ भृशाय० भृशमा० ॥ ५ ॥

८—(ऋ०) अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः। उपत्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥ १ ॥ (य०)

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञ मिमिक्षतम् ॥ २ ॥ (सा०) अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूप तेजः पृथिव्यामधि यत्सबभूव। अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥ ३ ॥ (अ०) रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च। अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः ॥ ४ ॥ समाह्वयन्त गगन दिवौकसां निवासभूतं सुविनिर्मलं च। आरक्तहीनं रुचिर पुराणं भजामि नाकं स्वकुलाभिवृद्ध्यै॥ आकाशाय० आकाशमा० ॥ ५ ॥

९—(ऋ०) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि। नियुत्वान् त्सोमपीतये। १ ॥ (य०) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरागहि। नियुत्वान्सोमपीतये ॥ २ ॥ (सा०) वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्र न आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥ (अ०) वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि। स हिरण्यजाः शङ्खः कृश नः पात्वंहसः ॥ ४ ॥ धूम्रं ह्वयं गन्धवसुरम्यं मृगाधिरूढ त्रिदशैकवन्द्यम्। सुपूजकानन्दकरं पुराणं भजामि वायुं स्वकुलाभिवृद्धये। वायवे० वायुमा० ॥ ५ ।

१०—(ऋ०) पूषणन्व १ जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ १ ॥ (य०) पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन। स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ २ ॥ (सा०) शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३ ॥ (अ०) अपन्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः। सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान्परि पातु मृत्योः ॥ ४ ॥ एह्येहि पूषन् सुविचारदक्ष हयाधिरूढाखिलधर्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भवन्नमस्ते ॥ पूष्णे० पूषणमा० ॥ ५ ॥

११—(ऋ०) वि दद् यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः। अग्रं नयेत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् । १ ॥ (य०) तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोविततं सञ्जभार। यदेदयुक्त हरितः सधस्तादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ २ ॥ (सा०) अभि त्यं देवं

सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसव रत्नधामभि प्रियं मतिम्। ऊर्ध्वो यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ ३ ॥ (अ०) इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य। प्राञ्चो अगाम नृत्तये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ ४ ॥ समाह्वयन्तं वितथं विशालं सुपूजकानन्दकरं वरेण्यम्। त्रिशूलहस्तं मकराधिरूढं भजामि देवं कमलायताक्षम् ॥ वितथाय० वितथमा० ॥ ५ ॥

१२—(ऋ०) गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ १ ॥ (य०) अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽ अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्रते हरी ॥ २ ॥ (सा.) अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥ ३ ॥ (अ०) यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्। तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्मभिन्धां परमे सधस्थे ॥ ४ ॥ एह्येहि लोकेश्वरदिव्यमूर्ते गृहक्षत त्वं कनकाद्रिरूपम्। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥ गृहक्षताय० गृहक्षतमा० ॥ ५ ॥

१३—(ऋ०) यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। धर्मं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः ॥ १ ॥ (य०) यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घर्माय स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ २ ॥ (सा०) नाके सुवर्णमुप यत्पन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ३ ॥ (अ०) यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्। यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्तेनोदनेनाति तराणि मृत्युम् ॥ ४ ॥ एह्येहि दण्डायुध धर्मराज कालाञ्जनाभासविशालनेत्र। विशालवक्षःस्थलरौद्ररूपं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ यमाय० यममा० ॥ ५ ॥

१४—(ऋ०) अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन्। केशो केतस्य विद्वान् त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥ १ ॥ (य०) गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडित।

इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥ २ ॥ (सा०) ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधिनाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्राबिभ्रदस्यायुधानि। वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं स्वा३र्णं नाम जनत प्रियाणि ॥ ३ ॥ (अ०) प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्या यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ ४ ॥ एह्येहि गन्धर्वसुप्रियेश रक्तोत्पला-भाससुधात्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भगवन्नमस्ते ॥ गन्धर्वाय० गन्धर्वमा० ॥ ५ ॥

१५—(ऋ०) सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ १॥ (य०) सोरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ २ ॥ (सा०) अभी षु णः सखीनामविता जरि तृणाम्। शतं भवा स्यूतये ॥ ३ ॥ (अ०) अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुर्देवानामुत मानुषाणाम्। इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ४ ॥ समाह्वाययन्तं शिखिपृष्ठसंस्थं श्रीभृङ्गराजं जगतः शरण्यम्। खट्वाङ्गहस्तं वरदं जनेशं यजामि देवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ भृङ्गराजाय० भृङ्गराजमा० ॥ ५ ॥

१६—(ऋ०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताळ्हि विमृधो नुदस्व ॥ १ ॥ (य०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावतऽ आ जगन्था परस्याः। सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढ़ि वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥ (सा०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढ़ि वि मृधो नुदस्व ॥ ३ ॥ (अ०) परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ एह्येहि गोरोचनादिव्यमूर्ते

मृगप्रकृष्टांविहरासुरारे। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भगवन्नमस्ते ॥ मृगाय० मृगमा० ॥ ५ ॥

१७—(ऋ०) यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनु स्वाः ॥ १ ॥ (य०) उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥ २ ॥ (सा०) अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ ३ ॥ (अ०) क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम्। नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥ ४ ॥ समाह्वयान् दिव्यपितन् कुलेशान् रक्तोत्पलाभानिह रक्तनेत्रान्। सुरक्तमाल्याम्बरभूषितांश्च नमामि पीठे कुलवृद्धिहेतोः ॥ पितृभ्यो० पितृनावा० ॥ ५ ॥

१८—(ऋ०) द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेअन्यान्या वत्समुप धापयेते हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ् शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥ (य०) द्वे विरूपे चरतः स्वऽर्थेअन्यान्या वत्समुपधापयेते। हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रोऽ अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ २ ॥ (सा०) तद्विष्णोः परमं पद सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥३॥ (अ०) यद्दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम। अपैतु तत्र मत्पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥४॥ एह्येहि दौवारिकदण्डपाणे विशालपङ्केरुहलोचनेत्र। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भवन्नमस्ते ॥ दौवारिकाय० दौवारिकमा० ॥ ५ ॥

१९—(ऋ०) शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ १ ॥ (य०) नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्राऽ उपश्रिताः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥२॥ (सा०) वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥ ३ ॥ (अ०) रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत्पिशाचाः पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः। वीरुद्वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥ ४ ॥ एह्येहि सुग्रीव सुरेशपूज्य

दशाश्ववाहविगुणात्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां मनोरमां त्वं भगवन्नमस्ते ॥ सुग्रीवाय० सुग्रीवमा० ॥ ५ ॥

२०—(ऋ०) ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ १ ॥ (य०) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २ ॥ (सा०) कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ३ ॥ (अ० एषा यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश। आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली। एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ४ ॥ एह्येहि विघ्नाधिपते सुरेन्द्र ब्रह्मादिदेवैरभिवन्द्यपाद। देवेश विद्यालय पुष्पदन्त गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ पुष्पदन्ताय० पुष्पदन्तमा० ॥ ५ ॥

२१— ऋ०) तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयु प्र मोषीः ॥ १ ॥ (य०) इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय त्वामवस्युराचके ॥ २ ॥ सा०) यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः। आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥ ३ ॥ (अ०) अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ ४ ॥ एह्येहि लोकेश्वर पाशपाणे यादोगणैर्वन्दितपादपद्म। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ वरुणाय० वरुणमा० ॥ ५ ॥

२२ (ऋ०) प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म। घृतं न यज्ञ आस्ये सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥ १ ॥ (य०) यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय। इमन्तर्ठं० शुक्रं मधुमन्तमिन्दुर्ठं० सोमर्ठं० राजानमिह भक्षयामि ॥ २ ॥ (सा०) यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥ ३ ॥ (अ०)

सोद्क्रामत्सासुरानागच्छत्तामसुरा उपाह्वायन्त माय एहीति। ।४।। एह्येहि देवेश जगत्प्रताप महोग्ररूपासुरविश्वमूर्ते। महाबलः खड्ग-गदास्त्रपाणे पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ।। असुराय० असुरमा० ।। ५ ।।

२३—(ऋ०) शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये प्रवीरवस्य मह्ना। सृजदर्णास्यव यद् युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान्।। १ ।। (य०) शं नो देवीरभिष्टय ऽ आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्रवन्तु नः ।। २ ।। (सा०) त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः। त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ।। ३ ।। (अ०) यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो य सुदत्रः। येन विश्वाः पुष्यसि वार्याणि तमिह धातवे कः ।। ४ ।। एह्येहि कीलावलिलीढ विश्वयज्ञेऽत्र देवर्षभसंघ-सेव्ये। गृहाण पूजां विधिना प्रदत्ता शोषे सुदक्षाय नमोऽस्तु शोष ।। ५ ।।

२४—(ऋ०) पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। तुर्याम दस्यून् तनूभिः ।। १ ।। (य०) एतत्ते रुद्राऽवसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ।। २ ।। (सा०) अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्त्याशवः ।। ३ ।। (अ.) न वा उ ते तनूं तन्वा १ सं व पृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ।।४।। एह्येहि पापेन सदा विजेन देवासुराणां सचराचराणाम्। मां पाहि नित्यं सकलत्र पुत्रं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ।। पापाय० पापमा० ।। ५ ।।

२५ — ऋ०) नाशयित्री पलाशस्या रुषसौ पथिकासु। अथो ततस्य यक्ष्माणमपाया रोगनाशिनी ।। १ ।। (य०) द्रापेऽ अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत् ।। २ । (सा० य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदाशसा। अभि व्रजं तात्नषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज। ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज। ३ ।। अ.) शीर्षक्ति शोर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शोर्षण्यं ऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ।। ४ ।। एह्येहि

रोगाधिपतेऽमरेश नानाविधैश्वर्यहयादियुक्त। ब्रह्मादिदेवैरभिवन्दनीय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ रोगाय० रोगमा० ॥ ५ ॥

२६—(ऋ०) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमाना। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ १ ॥ (य०) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेति परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमाꣳसं परिपातु विश्वतः ॥ २ ॥ (सा०) विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति। अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥ ३ ॥ (अ०) ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः। अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥ ४ ॥ समाह्वयन्तं फणिराजमग्र्यं नानाफणामण्डलराजमानम्। भक्तैकगम्यं जनताशरण्यं यजाम्यहं नः स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ अहये० अहिमा० ॥ ५ ॥

२७—(ऋ०) मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा। वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ १ ॥ (य०) अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ २ ॥ (सा०) विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वं स्वा हि ते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ३ ॥ (अ०) निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा। छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमूर्वार्वा इव ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं सुरदेवसेवितं जीमूतसंकाशमुमाधिनाथम्। मुख्याभिधं देवमिहार्थताद्यैः पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ मुख्याय० मुख्यमा० ॥५॥

२८—(ऋ०) भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे ॥ १ ॥ (य०) इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ २ ॥ (सा०) इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ ३ ॥ (अ०) पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्। आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम् ॥ ४ ॥

एह्येहि मल्लाटशशाङ्कमूर्त्ते सुरासुरैरचितपादपद्म। देदीप्यमानोप्सरसां गणेन गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ मल्लाटाय० मल्लाटमा० ॥ ५ ॥

२९—(ऋ०) आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः। भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १॥ (य०) सोमठं राजानमवमेऽग्निमन्वारभामहे। आदित्याग्विष्णुठं सूर्य ब्रह्माणं च बृहस्पतिᳬ स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) सोमं पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति। अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥ ३ ॥ अ०) सोम राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे। आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माण च बृहस्पतिम् ॥ ४ ॥ एह्येहि ताराधिपते सुरेश श्वेतोत्पालाभाससुधाकरेश। पीठेऽत्र देवश गृहाण पूजां पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ सोमाय० सोममा० ॥ ५ ॥

३०—(ऋ०) न चोरभयं न च सर्पभयं न च व्याघ्रभयं न च मृत्युभयम्। यस्यापि मृत्युर्न च मृत्युः सर्वं जयते ॥ १ ॥ (य०) नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। येऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ २ ॥ (सा०) यदद्य सूर उदितेऽ नागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥ ३ ॥ (अ०) गन्धर्वात्सरसः सर्पान्देवान्पुण्यजनान् पितॄन्। दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन् ॥ ४ ॥ आगच्छतागच्छत सर्पदेवाः संसारभीतिप्रमुखा वरेण्याः। धराधरा रत्नविभूषिताश्च गृहीत पूजां वरदा नमो वः ॥ सर्पेभ्यो० सर्पानावा० ॥ ५ ॥

३१— (ऋ०) रपदन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः। इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥ १ ॥ (य०) इडऽएह्यदित एहि काम्याऽएत मयि वः कामधरण भूयात् ॥ २ ॥ (सा०) उत स्यानो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्। सा शन्ताता मयस्करदप स्त्रिधः ॥ ३ । (अ०) अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्र त्विजो दैव्या ये। अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमीं रात्रिमभि हव्यमेति ॥ ४ ॥ एह्येहि मातरदिते शुभप्रदे यज्ञाधिपे सर्वजगत्प्रिये शुभे। सुराप्रिये नो भव विश्वधात्रि यजामि देवीं प्रकृतिं पुराणीम् ॥ अदितये० अदितिमा० ॥ ५ ॥

३२—(ऋ०) इमा नु कं भुवना सीवधामैन्द्रश्च विश्वे च देवाः यज्ञं च नस्तन्व च प्रजां चाऽऽदित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥ (य०) अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवाऽ अदितिः पञ्च जनाऽ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ २ ॥ (सा०) त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ (अ०) मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः। हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महाद् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥ एह्येहि देवि त्वमिहात्रयज्ञे प्रसीद मातर्दमनुकान्वयस्थे। दिते। महामोहकरी त्वमस्मान्पाहीन्द्रवन्दे प्रणता वयं ते ॥ दितये० दितिमा० ॥ ५ ॥

३३—(ऋ०) आपो हिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥ (य०) अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सन जायसे पुनः ॥ २ ॥ (सा०) शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः ॥ ३ ॥ (अ०) यत्ते अपोदकं विषं तत्त एता-स्वग्रभम्। गृह्णामि ते मध्यमनुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥४॥ समाह्वयाः श्वेतसुपावनेशीरापस्वरूपाः प्रबलप्रपन्नाः। सुपाशहस्ता वरदा अपोऽत्र यजामि देवीः कुलवृद्धिः हेतोः ॥ अद्भ्यो० अप आवा० ॥ ५ ॥

३४—(ऋ०) तत् सवितुर्वृणीमह वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥ (य०) हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिंं हिरण्ययीम्। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ २ ॥ (सा०) इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा। यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ ३ ॥ (अ०) नमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्। त्वष्टारमग्रियं नमस्तेनो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ॥ समाह्वयं दिव्यमुदारकीर्ति कलाकलाभिस्तु महोग्ररूपम्। सावित्रमग्र्यं सुविशालमूर्ति यजामि देवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ सावित्राय० सावित्रमा० ॥ ५ ॥

३५—(ऋ०) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्य वानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१॥ (य०) अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिꣳ स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् । भरेषुजाꣳ सुक्षितिꣳ सुश्रवसं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ २ ॥ (सा०) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां मरुतां शर्त उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥३॥ (अ०) प्रेता जयता नर उग्रावः सन्तु बाहवः । तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥४॥ एह्येहि सर्वायुधशोभमानसुरासुराणां जयकृन्महोग्र । जयाभिदत्वं भव नो जयाय नानाविधालङ्कृतिमन्नमस्ते ॥ जायप० जयमा० ॥ ५ ॥

३६—(ऋ०) इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१॥ (य०) नमस्ते रुद्र मन्यवऽ उतोतऽ इषवे नमः । बाहुभ्यामुत ते नमः ॥२॥ (सा०) जराबोधं तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय । स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ ३ ॥ (अ०) मा नो रुद्रः तक्मना मा विषेण मा नः संस्ना दिव्येनाग्निना । अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयेताम् ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्वज्ञ पिनाकपाणे सुरासुरैर्वन्दितपादपद्म पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥ रुद्राय० रुद्रमा० ॥ ५ ॥

३७—(ऋ०) वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तु चादृचम् । अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ १ ॥ (य०) यदद्य सूरऽ उदिते नागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ २ ॥ (सा०) प्र मित्राय प्रार्यम्णे स चथ्यमृतावसो । वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥ (अ०) गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् । अर्यमा नाम यो देवस्तेनो मुञ्चन्त्वं हसः ॥ ४ ॥ आवाहये अर्यमणं महेशं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम् । नीलाम्बुजाभासमयेश गुण्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ अर्यम्णे० अर्यमणमा० ॥ ५ ॥

३८—(ऋ०) सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥ १ ॥ (य०) विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्नऽ आसुव ॥ २ ॥ (सा०) आपानासो विवस्वतो जिन्वत उषसो भगम्। सूरा अण्वं वितन्वते ॥ ३ ॥ (अ०) श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ४ ॥ एह्येहि पीठे सवितर्दिनेश सप्ताश्वसंयुक्तरथाधिरूढ। रक्तोत्पलाभासविशालनेत्र गृहाण पूजां भगवन्नमस्तते ॥ सवित्रे० सवितारमा० ॥ ५ ॥

३९—(ऋ०) परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ १ ॥ (य०) विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन्मत्स्व। श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः। पुमान्पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥ २ ॥ (सा०) आपानासो विवस्वतो जिन्वना उषसो भगम्। सूरा अण्वं वि तन्वते ॥ ३ ॥ (अ०) अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्बर्हिष्या निषद्य ॥ ४ ॥ एह्येहि रक्ताम्बर रक्तदेह सर्वैनसोनाशनरं गहर्तः। आरोग्यदातः सकलार्थनेत्रे विवस्वते तुभ्यमहं नमामि ॥ विवस्वते० विवस्ततमा० ॥ ५ ॥

४०—(ऋ० उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ १ ॥ (य०) स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्यस्मद्द्वेषाᳬ सि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) अपिवत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। तत्रादिष्ट पौंस्यम् ॥ ३ ॥ (अ०) अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥४॥ आवाहयेऽहं विबुधाधिपं त्वां चतुर्दंतं पर्वतसन्निभं प्रभुम्। गजाधिरूढं सकलाप्तिदोहं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ विबुधाधिपाय० विबुधाधिपमा० ॥ ५ ॥

४१––(ऋ०) यस्मिन् देवा यन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये ३ न बयमस्य विद्म। मित्रो नो अत्रादितिरनागान् त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ १ ॥ (य०) मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्यमम् ॥ २ ॥ (सा०) मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। या जाता पूतदक्षसा ॥ ३ ॥ (अ०) इटस्य ते विचताम्यपिनद्धमपोर्णुवन्। वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युऽनजतु ॥ ४ ॥ एह्येहि रक्ताम्बरधारिमित्र सप्ताश्ववाहस्त्रिदशैकनाथ। श्वेतोत्पलाभास विशालनेत्र गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ मित्राय० मित्रमा० ॥

४२––(ऋ०) मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ १ ॥ (य०) नाशयित्री बलासस्यार्शसऽ उपचितामसि। अयो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ २ ॥ (सा०) तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत्स मन्दी धावति ॥ ३ ॥ (अ०) मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्वायुधशोभमान श्रीरामयक्ष्मन् त्रिगुणात्ममूर्ते। पीठेत्र देवेश गृहाण पूजां देवाधिप्रवेश भगवन्नमस्ते ॥ राजयक्ष्मणे० राजयक्ष्माणमा० ॥ ५ ॥

४३––(ऋ०) द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञ देवेषु यच्छताम् ॥ १ ॥ (य०) स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ २ ॥ (सा०) यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय। तत् पृथिवीमप्रथयस्तभ्ना उतो दिवम् ॥ ३ ॥ (अ०) इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवि सुमनस्यमाना। अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥ एह्येहि पृथ्वीधरशार्ङ्गपाणे उदरकीर्ते सुविशालमूर्ते। चतुर्भुजत्वमिह पूजयामि वरिष्ठदेवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ पृथ्वीधराय० पृथ्वधरमा० ॥ ५ ॥

४४—(ऋ०) आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥१॥ (य०) यस्यास्ते घोरऽ आसन्जुहोम्येषां

बन्धानामवसर्जनाय। यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः ॥ २ ॥ (सा०) पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने। विश्वा अप द्विषो जहि ॥ ३ ॥ (अ०) आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन्। तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद् हिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश्वर आपवत्सं महाबलस्त्वं प्रथितः सुरेश। मयूरवाट् त्रिदशैकवन्द्य गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ आपवत्साय० आपवत्समा० ॥ ५ ॥

४५—(ऋ०) ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता। इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ १ ॥ (य०) ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्याऽउपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥ २ ॥ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसश्च विवः ॥ ३ ॥ (अ०) य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदन्। तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा संस्तौतु भद्रया ॥ ३ ॥ एह्येहि विप्रेन्द्र पितामहेश हंसाधिरूढ त्रिदिशैकवन्द्य। श्वेतोत्पलाभास कुशाब्जहस्त गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा० ॥ ५ ॥

४६ –(अ०) वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥ (य०) वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ २ ॥ (सा०) वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सौम्यानाम्। द्रप्सः पुरा भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ ३ ॥ (अ०) इहैव स्त माप याताध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु। वास्तोस्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥४॥ एह्येहि पातालताधिवासन् वास्तोष्पते स्वच्छ सुधर्ममूर्ते ॥ गृहाधिदेवेश परेश नित्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ वास्तोष्पतये० वास्तोष्पतिमा० ॥ ५ ॥

४७—(ऋ०) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥ (य०) यं ते देवी निर्ऋतिराबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचत्यम्। तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः। नमो भूत्यै येदं चकार ॥ २ ॥ (सा०) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचिताद्धिरण्यरूपमव कृणुध्वम् ॥३॥ (अ०) यत्ते देवो निर्ऋतिराबबन्ध दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्। तत्ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं चरकीमिह त्वा सुरारताक्षीं गुरुशङ्खधारिणीम्। ईशानकोणस्थितिमत्र कृत्य गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ चरक्यै० चरकीमा० ॥ ५ ॥

४८ - (ऋ०) ऋषभं मा समानानां सपत्नान ! विषासहिम्। हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥ १ ॥ (य०) अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणु मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ २ ॥ (सा०) यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ ३ ॥ (अ०) अनाप्ता येवः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे। वीरान्नो अत्र मा दमन्तद्व एतत्पुरो दधे ॥ ४ ॥ एह्येहि दैत्ये मम वास्तुयज्ञे मार्जारतुल्याननहस्तजे त्वम्। चापासि खट्वाङ्गधरे विदारि गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ विदार्यै० विदारीमा० ॥ ५ ॥

४९—(ऋ०) विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्क। अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ १ ॥ (य०) इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिरुपलान्प्लीह्ना वल्मीकान्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान्कुक्षिभ्याꣳ समुद्र-

मुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ २ ॥ (सा०) उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव । महान्तं त्वा महीनाँ सम्राजं चर्षणीनाम् ॥ ३ ॥ (अ०) हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुहोमि स जुषस्व हव्यम् ॥ ४ ॥ एह्येहि दैत्यैऽसुरसङ्घमुक्ते सुपूतने मे मखकर्मणि त्वम् । पाहि त्वमस्मान् सततं शिवाय गृहाणमेऽर्चां वरदे नमस्ते । पूतनायै० पूतनामा० ॥ ५ ॥

५०—(ऋ०) अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरैवा । पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥१॥ (य०) यस्यास्ते घोर ऽआसन्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्र मन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः ॥ २ ॥ (सा०) परि प्रासिष्यदत्कवि सिन्धोरूर्माबधि श्रितः । कारुं बिभ्रत्पुरुस्पृहम् ॥ ३ ॥ (अ०) पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौ शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्वे शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ ४ ॥ आवाहयिष्ये त्वामध्वरचारचारुसिद्ध्यै पापे तथा राक्षसि धूम्रवस्त्रे । रक्तासने शस्त्रधरे महेशि गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते ॥ पापराक्षस्यै० पापराक्षसीमा० ॥ ५ ॥

५१—(ऋ०) यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यान् त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥ (य०) यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्त पक्षा हरिणस्य बाहु उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ २ ॥ (सा०) यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः । आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥ ३ ॥ (अ०) द्रप्सश्च स्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनुपश्च पूर्वः । ससानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा ॥ ४ ॥ एह्येहि देवेशि षडानन त्वं कपर्दितेजोऽ

शमुद्भवो हि । मयूरवाहो जितकामदेवो गृहाणपूजां भगवन्नमस्ते ॥ स्कन्दाय० स्कन्दमा० ॥ ५ ॥

५२—(ऋ०) यदद्य सूर उदितेऽ नागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ (य०) यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुनाति सविता भगः ॥ २ ॥ (सा०) प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्य-मृतावसो वरूथ्ये ३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥ (अ०) अर्यमणं यजामहे सुबन्धु पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ ४ ॥ आवाहयेऽन्नार्यमणं महेशं सुरासुरैरर्चितादपद्म नीलाम्बुजाभास महेशकीर्ति गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ अर्यम्णे० अर्यमणा० ॥ ५ ॥

५३—(ऋ०) जिह्मश्ये ३ चरितवे मघोन्याभोगय इष्ठये रा उ त्वम् । दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ १ । (य०) हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽ-वक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहा यनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा २ (सा०) तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्राच्यं कृतम् । यो देवस्य शवसा प्रारिणा असुरिणन्नपः । भुवो विश्वमभ्जदेवमोजसा-विदेदूज शतक्रतुविदद्विषम् । ३ ॥ (अ०) ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती । ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमि जेभयतामिति ॥ ४ ॥ आवाहये त्वां प्रहरं च मुख्यं जृम्भायमाणं वरखड्गहस्तम् । प्रत्यग्दिशायां च सुरक्षणीयमत्राधिवासं कुरु जृम्भक त्वम् ॥ जृम्भकाय० जृम्भकमा० ॥ ५ ॥

५४—(ऋ०) आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो ३ न गावो नक्षन्नृतं

जरितो रस्त । इन्द्र याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे विवाजान् ॥ १ ॥ (य०) का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किॅं स्विदासीद् बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ २ ॥ (सा०) प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न प्पिये अर्णसा । अंशो पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥ (अ०) नैन रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवनामोजः प्रथमजं ह्ये ३ तत् । यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं सजीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ४ ॥ आवाहये तं पिलिपिच्छिकं च मयूरपिच्छानि विधारयन्तम् । वामे तु हस्ते धनुरादधानं बाणं दधानं त्वितरे तु हस्ते ॥ पिलिपिच्छाय० पिलिपिच्छमा० ॥ ५ ॥

५५—(ऋ०) त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः रिष्ठिता अहिना शूर पूर्वी । त्वद् वावक्रे रथ्यो ३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ १ ॥ (य०) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रॅं हवे हवे सुहवॅं शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रॅं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ २ ॥ (सा०) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । हवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ ३ ॥ (अ०) इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश । संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेश रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥ इन्द्राय० इन्द्रमा० ॥५॥

५६—(ऋ) त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥ (य०) त्वन्नोऽ अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽ अवयासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाॅंसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥ २ ॥ (सा०) अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यं सद्विश्वं न्य ३ त्रिणम् । अग्निनो वंसते रयिम् ॥ ३ ॥ (अ०) अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायती मुषासम् । यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्वामर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टम् । तेजौवतालोकनणेन सार्द्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते ॥ अग्नये० अग्निमा० ॥ ५ ॥

५७ – (ऋ०) दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम स यक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति। यमस्य यो मन वते सुमन्त्वग्ने तभृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ १ ॥ (य०) यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा घर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ॥ २ ॥ (सा०) नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य यौनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ३ ॥ (अ०) क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः। इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ४ ॥ एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैर्चितधर्ममूर्ते। शुभाशुभानन्द शुचामधीश शिवाय नः पाहि भगवन्नमस्ते ॥ यमाय० यममा० ॥ ५ ॥

५८—(ऋ०) सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्। शुभे रुक्मं न दर्शनं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ १ ॥ (य०) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहितस्करस्य। अन्यमस्मदिच्छ सात इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ २ ॥ (सा०) वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥ (अ०) इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः। उत्त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि ॥ ४ ॥ एह्येहि रक्षोगणनायक त्वं बिशालवेतालपिशाचसङ्घैः। विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते। निर्ऋतये० निर्ऋतमा० ॥ ५ ॥

५९—(ऋ०) नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत। दूर दृशे देव जाताय केतवे दिनस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥ १ ॥ (य०) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳ स मा न आयुः प्रमोषीः ॥२॥ सा०) यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम ॥ ३ ॥ (अ०) कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्बलेन सवितुः सवेन। अग्नेर्होत्रेण प्र णु दे सपत्नांछम्बी नावमुदकेषु धीरः ॥ ४ ॥ एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य

सहाप्सरोभिः । विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहित्वमस्मान्भगवन्नमस्ते ॥ वरुणाय० वरुणमा० ॥ ५ ॥

६०—(ऋ०) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान् त्सोम पीतये ॥ १ ॥ (य०) आ नो नियुद्भिः शतिनि-भिरध्वरꣳ सहस्त्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् । वायो ऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २ ॥ (सा०) वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूँषि तारिषत् ॥ ३ ॥ (अ०) वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिछ्ये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश समीरण त्वं मृगाधिरूढः सहसिद्धसङ्घैः । प्राणस्वरू-पिन्सुखतासहायः गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ वायवे० वायुमा० ॥ ५ ॥

६१—(ऋ०) आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवानः सुश्रवस्तमः सखावृधे ॥ १ ॥ (य०) वयꣳ० सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ २ ॥ (सा०) तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे । पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥ ३ ॥ (अ०) सोम ओषधी भिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च यच्छन्तु ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम् । सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ सोमाय० सोममा० ॥ ५ ॥

६२—(ऋ०) ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ १ ॥ (य०) तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामशद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २ ॥ (सा०) अभि त्वा शूर नोनुनोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्रः तस्थुसः ॥ ३ ॥ (अ०) ईशाँ वो वेद राज्यं त्रिसन्धे अरुणैः केतुभिः सह । ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये

च मानवाः ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश्वर नस्त्रिशूल कपालखट्वाङ्गधरेण-साकम् । लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ईशानाय० ईशानमा० ॥ ५ ॥

६३—(ऋ०) ब्रह्माण इन्द्राय याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः । विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥ १ ॥ (य०) अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः । यः शꣳ० सते स्तुवते धायि पज्रऽ इन्द्रज्येष्ठाऽ अस्माँ २ ॥ अवन्तु देवाः ॥ २ ॥ (सा०) मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः । परमेष्ठी प्रजापतिर्दिव द्यामिव दृंहतु ॥३॥ (अ०) ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः । सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥ ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा० ॥ ५ ॥

६४—(ऋ०) तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरूपस्थे ः अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद् टरितः सं भरन्ति ॥ (य०) स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म स प्रथाः ॥ २ ॥ (सा०) अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्या अधि सानवि ॥ ३ ॥ (अ०) शुष्मिम्तगं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं पीतये ॥ ४ ॥ एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमानः । यक्षोरगेन्द्रामर लोकसार्धंमनन्तरक्ष ध्वरमस्मदीयम् ॥ ५ ॥

॥ इति महारुद्रादि यज्ञों में चतुर्वेदोक्त मन्त्रों द्वारा वास्तु पूजन समाप्तः ॥

* परिशिष्ट *

विविध विषयों का विवेचन

मण्डप का नाम आदि कथन–

१–(क) आठ हाथ के मण्डप को 'जय' संज्ञा (ख) दस हाथ के मण्डप को 'विजय' संज्ञा (ग) बारह हाथ के मण्डप को 'भद्र' संज्ञा। (घ) चौदह हाथ के मण्डपकी 'सुभद्र' संज्ञा। (च) सोलह हाथ के मण्डप को 'आनक' संज्ञा। छ) अठारह हाथ के मण्डप को 'विश्वरूप' संज्ञा। (ज) बीस हाथ के मण्डप को 'ध्रुव' संज्ञा। बाइस हाथ के मण्डप को 'सुभद्रक' संज्ञा। चौबीस हाथ के मण्डप को सुप्रसन्न' संज्ञा बोधायन मुनि ने कही है।

२–चौबीस हाथ के मण्डप का नाम घन, बाइस हाथ का मण्डप दक्ष, बीस हाथ का मण्डप घर्घर, अठारह हाथ का सुघोष, कला हाथ का कामराजक, चौदह हाथ काञ्चन, बारह हाथ का विराम, दशहाथ का घोर, आठ का घन मण्डप विधान पारिजात के मत से होता है।

मेखला विचार–

१–पन्द्रह अंगुल खात पक्ष में नव अंगुल की मेखला होगी।

२–मुष्टिमात्र कुण्ड में मेखला की ऊचाई और लबाई दो अंगुल, एक अंगुल और आधी अंगुल की होगी।

३–अलिमात्र कुण्ड में मेखला तीन दो और एक अंगुल की होगी।

४–दो हाथ के कुण्ड में मेखला छः चार और तीन अँगुल की बराबर की होगी।

५–चार हाथ के कुण्ड में आठ, छः और चार अंगुल की मेखला होगी।

६–छः हाथ के कुण्ड में मेखला दस, आठ और छः अंगुल की होगी।

७–आठ हाथ के कुण्ड में मेखला बारह, दस और आठ अंगुल की होगी।

८–दस हाथ के कुण्ड में मेखला चौदह, बारह और दस अंगुल की होगी।

वेदी विचार–

१—कुण्ड कल्पद्रुममत से कुण्ड और वेदी का अन्तर सवा हाथ छोड़कर करे। यह प्रायः सोलह हाथ का मण्डप परक है।

२—क्रियासार मत से वेदी ओर कुण्ड का अन्तर दो हाथ का होना चाहिये। चौबीस हाथ मण्डप परक है।

३—दिशा और विदिशा में वेदियों के लिए तेरह-तेरह अंगुल मंडप की जमीन छोडकर वेदी बनानी चाहिये।

४—चतुः कुण्डी पक्षे खातं नास्मीत युक्तं हेमाद्रौ—यत्रोपदिश्यते कुण्डं चतुरकं तत्र कर्माणि वेदास्मसर्धचन्द्रं च वृतं पद्मनिमंतं तथा। पीठ वद्वर्धयेत्कुण्डं सुप्रमाणेष्वगर्तकम् ॥

कुण्डों के निर्माण से विविध फलों की प्राप्ति

१—चतुरस्रकुण्ड-शान्ति, विजय लक्ष्मी सिद्धि, स्तंभन कार्य के लिए बनाना चाहिये।

२—अर्धचन्द्रकुण्ड—वशीकरण, प्रजा वृद्धि, संताप, शान्ति कामना, मंगल कामना और मारण कामना के लिए बनाना चाहिये।

३—त्रिकोण कुण्ड—आकर्षण, शत्रुनाश, और द्वेष कामना के लिए बनाना चाहिये।

४—षट्कोण कुण्ड—मारण, स्तंभन और उच्चाटन कार्य के लिए बनाना चाहिये।

५—वृत्त कुण्ड—अभिचार, सुख संपत्ति, मंगल कामना, और शान्ति कामना के लिए बनाना चाहिये।

६—पद्म कुण्ड—मानसिद्धि, धन कामना, आरोग्य कामना, वृष्टि कामना प्रजनन, पौष्टिक कार्य तथा सब कामनाओं के लिए बनावे।

७—योनि कुण्ड—पुत्र, ऐश्वर्य और आकर्षण कामना के लिए बनावे।

८—अष्टास्र कुण्डा मुक्तिकामना शुभकामना और मोन सिद्धि कामना के लिए बनावे।

९—पञ्चास्त्र कुण्ड—भूत-प्रेतादि को हटाने के लिए बनाना चाहिये।
१०-सप्तास्त्र कुण्ड—अभिचार के हटाने के लिए होता है।
११-आचार्य कुण्ड सम्पत्ति और ऐश्वर्य को देने वाला होता है।
१२-कौशिक परिशिष्ट मत से पद्मकुण्ड सब कामना के लिए बना सकते हैं। 'सर्वं कर्मसुविज्ञेयं कुण्डं पद्म निभं तु यत्'।
१३-नित्यषोडशिकार्णवतन्त्र का मत है कि—

१—योनि कुण्ड से बोलने में चपलता और आकृति उत्तम होती है। (२) वर्तुल से लक्ष्मी प्राप्ति होती है। (३) अर्धचन्द्र कुण्ड से उपरोक्त तीनों बातें मिलती हैं। (४) षडस्र और त्रिकोण कुण्ड से खेचरत्त्व की प्राप्ति होती है। (५) चतुरस्र से शान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि और आरोग्यता प्राप्त होती है। (६) पद्मकुण्ड से सब प्रकार की सम्पत्ति जल्दी मिलती है। (७) अष्टकोण कुण्ड से अच्छा फल प्राप्त होता है।

विशेष-किसी का कहना है कि—जिस कुण्ड के ग्रन्थ द्वारा चतुरस्र आदि कुण्डों का निर्माण करे—उसी से जितने आवश्यक हो कुण्डों को बनावे। ऐसा कोई नियम नहीं है। फिर भी उनके त्याग का कोई विधि वाक्य हो ऐसा भी नहीं देखने में आया।

कुण्ड कौमुदी—

कुण्डों की मेखला

द्वादशाङ्गुलमेखलाविधौ व्योम चन्द्रविमिताङ्गुलेस्तथा बाणचन्द्र १५ विमितैस्तथायता रामचन्द्र-विमि १३ तैस्तुयोन्नता॥

बारह अगुल मेखलापक्ष में योनि की ऊचाई पन्द्रह अंगुल और चौडाई तेरह अंगुल होगी।

कुण्डकारिका के मत से—

१—मेखला कुण्ड के बाहर बनेगी कुण्ड के भीतर नही।
२—कुण्ड के चारों तरफ पृथ्वी को छोड़कर बाहर-बाहर मेखला बनेंगी।
३—नव अंगुल ऊची, तीन अङ्गुल ऊँची और विस्तार-चार अंगुल, तीन अंगुल और दो अंगुल अलग होगा।

४—कुण्डो र्दाघ-मेखला कण्ठ के बाहर रहती है।
'कण्ठे तद्बाह्ये मेखला स्यु।'
कुण्ड कल्पद्रुम—कुण्ड रूप सहशाहि मेखलाः'।

नाभि विचार–

१—कुण्ड कौमुदी और कुण्ड रामवाजपेयी मत से पद्म कुण्ड के छोड़कर बाकी के कुण्डों में कुण्ड के आकार की या पद्माकार नाभी बनावे। कुण्डकौमुदी—नाभी दो अंगुल ऊँची और चार अंगुल चौड़ी होती है। कुण्ड कारिका—४ अंगुल चौड़ी २ अंगुल ऊची नाभी होती है। नाभी ठीक कुण्ड के मध्य में रहती है। नाभी पद्मकुण्ड में नाभी ६ अंगुल लम्बी और उतनी ही ऊँची होती है और वर्तुल होती है। उसके चारों तरफ केसर लगते है।

आवश्यक विचार

१—गुरु (आचार्य) और ऋत्विज मिलकर कुण्ड की भूमि का परीक्षण करे। (विधान पारि जात पृ० ५७८)

२—यज्ञ यागादि में ब्राह्मण युग्म रखने चाहिये।

३—अंग विकल धन-धान्य पहारी, सर्वांग विकल आदि ऋत्विज यज्ञ में वृत होने से यजमान का नाश होता है।

४—अनुष्ठान क्रिया कुशल, यज्ञों की प्रक्रिया को जानने वाले, मन्त्रार्थ वेता, स्वस्त्री सेवी ब्राह्मणों को यज्ञ कार्य में ग्रहण करना चाहिये।

५—योनी के न रहने से स्त्री किसी के मत से पुत्र का मरण होता है।

६—कुण्ड के बन जाने पर मण्डप के चौतरे के ऊपर लबा-लब आ जाने पर योनि बनाना चाहिये।
'स्थलादारभ्य योनिः स्यात् इति स्वायंभव वचनात्।

७—योनी के एक दम ऊपर आजाने पर मध्य में कुछ ऊँची रखे। प्रयोग सारमत से मध्य में निम्न हो। क्योंकि मध्य में ऊच्चता रखने पर योनि के एक दम आगे जो छिद्र रहेगा। उस से आज्य का जाना असंभव होगा। यह कोटिहोमकारमत है।

८—योनी के ऊपर चारो तरफ परिधिर मेखला एक अंगुल या दो अंगुल की रखे।

९—कुण्ड की मेखला के पश्चिमदिशा से या दक्षिण के ठीक मध्य से योनी बनाना चाहिये।

१०- रामवाजपेयी मत से पुरुष का पांचवां अंश (भाग) कर (हाथ) होता है।

११-सांप्रदायिकमत से दुगनी से मध्य अंगुली पर्वकी पूरी लंबाई तक होता है।

१२-कात्यायन मत से एड़ी और को बाहुओं को ऊपर दीवाल के सहारे उठाकर या बिना एडी उठाए खड़े होकर नाप करावे। उसका जो पांचवा अंश हो। उसे हस्त को कुण्ड और मण्डप के कार्य में लेवे। यह पक्ष श्येनादि चिति मात्र विषय परक है। हेमाद्र आदि ग्रन्थ कार ने भी अपनी यही स्वीकृति दी है।

१३-किसी के मत से अंगूठे के पर्वपर्यन्त तक ग्रहण करना लिखा है।

१४-कुण्ड कार्य में मुष्यङ्गुल और देहांगुल का ग्रहण करे। पंचरात्र मत से वैकल्पिक है।

१.-'कर्म कर्तुः करोऽथवा' कर्ता का हाथ पूरी अंगुली तक ग्रहण करे।

१—घर के ईशान भाग में मण्डप बनवावे। यह वसिष्ठ संहिता का मत है।

१६-शिवालय, तीर्थ के किनारे पर, गोशाला, अपने घर में या किसी संशोधित भूमि में मण्डप बना सकते है। यह कुण्डकल्पद्रुम का मत है।

१७-जलाशयोत्सर्गकार्य में सीढी से दस हाथ छोड़कर ईशान, पश्चिम या उत्तर दिशा में मण्डप बनवावे।

१८-द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षष्ठमुख में दो कुण्ड होंगे दक्षिणोत्तर।

१९-इसमें आचार्य कुण्ड दक्षिण दिशावाला होगा।

२०-एक मुख में आचार्य कुण्ड मध्य का होगा। पाँच कुण्डी में ईशान का सात कुण्डी में ईशान और पूर्व का होगा।

२१-शतमुख में नैर्ऋत्यका होगा

२२-नवग्रह में सूर्य प्रधान होने से आचार्य कुण्ड सूर्य का ही होगा।

२३-दस मुख में आचार्य कुण्ड नैर्ऋत्य का ही होगा।

१—'यो निमध्यगतं लिगं मृत्पिण्डो' दक्षिणोतरौ। कुण्ड मरीचिमाला।
२—योनि का मुख पूर्व दिशा की तरफ अधोमुख रहना चाहिये।
३—योनी की लंबाई एक अंगुल अग्रभाग कुण्ड के मध्य में पश्चिम दिशाकी तरफ से प्रवेश कराना चाहिये।
४—योनि के न होने पर अपस्मार रोग होता है।
५—मानकी कमी में दरिद्रता होती है।
६—सूत्रकी अधिकता से मित्र से शत्रुता होती है।
७—न्यून खात में असिद्धि होती है।
८—अधिक खात में असुरों का राज्य होता है।
९—टूट फूट में उच्चाटन होता है।
१०-छिद्रता में मूक होता है।
११-विद्यार्णवतन्त्रे—

योनिश्च मध्य के भागे प्राङ्मुखी मध्य संस्थिता।
अष्टाङ्गुलैश्च विस्त्रीर्णा चायता द्वादशाङ्गुलैः॥
पृष्ठोन्नता जजोष्ठीचं सच्छिद्रा मध्य तोन्नता। सच्छिद्रा मध्यतोन्नता। सच्छिद्रामध्ये 'मध्ये त्वाज्यधृतिः समा' इति त्रैलोक्यसाखचनात्। आज्यधृतिरिति योनिमध्येगतं कर्तव्यमित्या हुःसांप्रदायिकाः।

तन्त्रसारे—अश्वस्थपत्राकृतिः स्यान्मूलतो द्वादशाङ्गुला।
योनिः खाते च विनता प्रतिष्टा द्वयङ्गुला तथा॥
कुंभ द्वयसमायुक्ता चाश्वत्थदलवन्मता।
अंगुष्ठ मेखला युक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिस्मथः॥

कुण्डमण्डप—

योनि मध्यगतं लिंगं तुंगं पृथुकराङ्गुलम् ।
मृत्पिण्डद्वितयं तस्याः पार्श्वे वा कुंभिकं भवेत् ।।

कुण्डमण्डप—

तस्मादारभ्य नालस्य योनिमध्ये मुखं स्भृतम् ।

१—योनि का मध्य कूर्म पृष्ठोन्तर होना चाहिये ।

२—योनि के ऊपर चारों तरफ एक अंगुल मेखला बनावे ।

३—योनि पीछे से कुछ ही ऊँची हो ।

१—कोटिहोमकारमतसे-घर के बाहर मण्डप बनाने की आवश्यकता हो तो अपने घर की जितनी लंबाई हो उतनी जगह छोड़कर मण्डप और कुण्ड बना सकते हैं ।

२—जमीन से एक हाथ या आधा हाथ मट्टी आदि से ऊँची करने पर वही मण्डप का स्थल (भूमि) माना जायगा । 'स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्' सिद्धान्तशेखर महाकपिल पञ्चरात्र मत से मण्डप भूमि एक ही हाथ ऊँची करे ।

३—ब्राह्मणादि वर्ण के व्यक्ति अपने-अपने कार्यों के अनुसार मण्डप का विस्तार कर सकते हैं । विश्वकर्मा ।

४—घन, घोष, विराज, कांचन, कामराजक, सुघ्येष, घर्घर, दक्ष और गहन ये नौ नाम मण्डप के हैं ।

त्रिविधे पक्षे यथावकाश ऋत्विक् सदस्य सामाजिकाद्युपवेशादेः सौकर्ययुक्तं मण्डपं कुर्यात् । विद्यार्णवतन्त्र पृ २७२

कुन्डोधोन—हस्तोन्नतं तदर्धं वा मण्डप स्थलमत्रसु ।

कुण्ड कल्पद्रुम—यद्वोचिते शोचित उन्न कृते हस्तेन कद्वेन समे
सुमण्डपः ।

मेरुतन्त्र—मण्डपं नवधा कृत्वा मध्य भागेऽस्य वेदिका।

स्तंभास्तुवेदिकायाम मण्डपारिधोच्छितावहिः ॥

भास्कर संहिता—पृ० १४

हृदां समां तदाकारामीषत् प्रागुत्तरप्लवाम्।

प्रोच्छ्रितां च विशेषेण स्थलां दर्पणसन्निभाम् ।

समान्या न भवेद्येन मेदनी मण्डपस्य तु।

'कुण्डं मध्य भागेतु कारयेच्चतुरस्त्रकम्' इत्यादि वचनोंसे मण्डपके नवमांश में अर्थात मण्डप के प्रधान मध्य भाग में कुण्ड बनेगा। वही प्रधान कुण्ड होगा, यह सब निबन्धों का निर्णीत पक्ष है।

यदि तुलादान, दीक्षा आदि का कार्य होगा तो मण्डप के मध्य प्रधान नवमांश में वेदी बनेगी। क्योंकि प्रधान देश को त्याग करने का कोई भी कारण नहीं दीखता।

यदि कहें—

एक वा शिवकाष्ठायां प्रतीच्यां कारये द्वुधः। भुक्तौ मुक्तौ तथा जीर्णोद्धारे तथैव च। दीक्षा होने तथा वृत्तं वरुण दिग्गतम् ॥

ये वचन दीक्षा तुलापुरुष विषयक हैं। कोटि होम का मत है। होमकार का मत अतः मध्य भाग में वेदी उसके चारो तरफ नवकुण्डी या पञ्चकुण्डी को कहकर एक कुण्ड का भी विधान पक्षान्तरसे कहा है। अतः प्रधान कुण्ड मध्य का हुआ। बाकी के कुण्ड गौण है। शास्त्रीय सिद्धान्त से प्रधान वेदी स्थितवक्ता आदि की आहुति का विधान केवल कुण्ड में करने का मिलता है। सभी स्थिति में पंच कुण्डी या नव प्रधान कुण्डी में सब कुण्डों को ही प्रधान माना जाय इसमें और कोई युक्ति भी नहीं मालुम होती।

शारदातिलक मत से भी तृतीय पटल में दीक्षा प्रकरण प्रारंभ है। उसीमें कुण्ड मण्डप की विधि भी लिखी है। उसमें पञ्च कुण्डी, नव कुण्डी एक कुण्डी आदि पक्ष भी लिखे है। उसमें यही सिद्ध होता है कि ये जो कुण्डादि का विधान दीक्षा आदि विषय को लेकर ही है।

श्री विद्यार्ण वितन्त्र ने भी-पृ. २८० में लिखा है कि [दीक्षायामष्टौ कुण्डानि कार्याति। अष्टकुण्ड करणशक्तौ प्रागादि चतुर्दिक्षु चतुरस्त्रार्ध चन्द्रवृजपद्माख्यानि चत्वार्येव कुण्डानि कुर्यात्। अत्राप्यशक्ताविन्द्रेशान मध्ये चतुरस्रमाचार्य कुण्ड मेक मेव कुर्यात्।

इस से भी यही आता है, इस तरह की व्यवस्था दीक्षामें लेना। हवन प्रधान में तो प्रधान कुण्ड मध्य प्रधान में होगा, वही आचार्य कुण्ड होगा। यह रुद्रकल्पद्रुमादिको भी अभीष्टतम् है। कुण्ड रत्नावली कारने भी अपने मूल ग्रन्थ में भी कुण्डानि चाष्टास्यथ वात्र सर्वाण्याम्नाय कोणानि च वर्तुलानि इन्द्रेशमध्ये ह्यथवा स्थिकोणं वृतं गुरौः स्यात्खलु कुण्डेमतत्।। तत्पश्चकुण्डयाभवतीशदिक्स्थं विदिक्स्थकुण्डेस्तु विनेसु ५ कुण्डी यदैककुण्डपक्षोऽस्ति प्राच्यामथापि वा। प्रतीच्यामुत्तरस्यां वा श्री शंभुदिशिवा कुरु।। एकं मध्य शुभदं मध्ये शानं जयाङ्गहवनेषु। आरभ्यैकादशिनीं लघुमहदतिरुद्रहवनविधौ।

लिखकर टिप्पणी में लिखा शारदा तिलक के श्लोक को उद्धृत किया है—

अष्टास्वाशासु रम्याणि कुण्डान्येतान्यनुक्रमात्।
चतुरस्रं योनिरर्धं चन्द्रत्र्यस्रं च वर्तुलम्।।
षडस्रं पंकजाकारमष्टास्रं तानि नामतः।।

इत्यादि वचनों को उद्धृत किया है।

एकं कुण्डं शुभदं मध्ये० पृ. २५ यह सही मानना होगा कि हवन प्रधान कर्म में मध्य में कुण्ड होगा। एक कुण्ड पक्ष में पंच कुण्डी पक्ष में ही नवकुण्डी पक्ष में भी वह प्रधान कर्म है। उसमें मध्य में कुण्ड अत्यावश्यक है। अत: प्रधान यही है बाकी के उस कुण्ड की अपेक्षा अप्रधान हैं। प्रधान कुण्ड में ही केवल विशेष आहुतियों का विधान है। वैसे ही शतकुण्ड आदि में नैर्ऋत्य कुण्ड को ही विशेष वचन से प्रधान माना है।

जय पृच्छाधिकार का मत है—शान्ति कामना के लिए उत्तर दिशा में कुण्ड, स्तंभन कामना के लिए पूर्व दिशा में, मारण कामना के लिए दक्षिण दिशा में, वशीकरणकामना के लिए पश्चिम दिशा में, दाय भाग के लिए अग्नि कोण में, विद्वेष कामना के लिए नैर्ऋत्य कोण में, उच्चाटन कामना के लिए वायव्य कोण में, अनेक कार्यों के सिद्धि के लिए ईशान कोण में कुण्ड बनाना चाहिये।

सिद्धान्त शेखरमत से—स्तंभन कार्य के लिए पूर्व दिशा में चतुरस्त्र कुण्ड, ऐश्वर्य के लिए अग्निकोण में योनि कुण्ड, मारण कार्य के लिए अर्धचन्द्र कुण्ड पश्चिम दिशा में, कुण्ड द्वेष कामना के लिए नैर्ऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड, शान्ति कामना के लिए पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड, उच्चाटन कार्य के लिए बायव्यकोण में षडस्त्र कुण्ड पौष्टिक कार्य के लिए उत्तर दिशा में पद्मकुण्ड और मुक्ति कामना के लिए अष्टास्त्र कुण्ड बनाना चाहिये।

यज्ञमण्डप के सम्बन्ध में विचार-

१-उत्तम मण्डप बत्तीस, चौबीस, बीस, अट्ठारह तथा सोलह हाथ का लंबा और चौड़ा कहा गया है।

मध्यम मण्डप चौदह तथा बारह हाथ का लंबा और चौड़ा कहा गया है।

अधम मण्डप दस हाथ का लंबा और चौड़ा कहा गया है। कुछ लोग आठ हाथके मण्डपकों भी अधम कहते हैं।

२—मण्डपकी ऊँचाई एक हाथ या आधा हाथ होती है।

३—मण्डपके भीतर चारों दिशाओं में चार वेदी बनती हैं। जैसे— ईशानकोणमें ग्रहवेदी, अग्निकोणमें योगिनीवेदी, नैर्ऋत्यकोणमें वास्तुवेदी और वायव्यकोण में क्षेत्रपालवेदी बनती है।

४—विष्णुयाग में प्रधानवेदी पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य में ही होती हैं।

५—रुद्रयागमें प्रधानवेदी ईशानकोण में ही होती है।

६—रुद्रयागमें प्रधानवेदीके दक्षिणमें 'ग्रहवेदी' होती है।

७—प्रधानवेदी एक हाथ ऊँची और दो हाथ चौड़ी होती है। अन्य क्षेत्रपाल आदि की चारों वेदियाँ एकएक हाथ ऊँची तथा एक-एक हाथ चौड़ी होती हैं।

८—ग्रहवेदीमें तीन सीढ़ी (वप्र) होती हैं। ग्रहवेदीकी तरह वास्तु, क्षेत्रपाल और योगिनी वेदीमें भी तीन-तीन सीढ़ी (वप्र) ही होनी चाहिये।

९—प्रधानवेदीमें दो सीढ़ी (वप्र) होती हैं।

१०-ग्रहवेदी आदि सभी वेदियोंकी ऊपर की और मध्य की सीढ़ी तीन-तीन अंगुल ऊँची और दो-दो अंगुल चौड़ी होती हैं। नीचेवाली तीसरी सीढ़ी दो अंगुल ऊँची और दो अंगुल चौड़ी होती है।

११-ग्रहवेदी आदि सभी वेदियों की तीनों सीढ़ियोंमें ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंगकी, मध्यवाली लाल रंगकी और नीचेवाली काले रंगकी होती है।

१२-प्रधानवेदी की ऊपरवाली सीढ़ी सफेद रंगकी और नीचेवाली लाल रंगकी होती हैं।

१३-यज्ञमण्डप में सोलह स्तम्भ होते हैं। बड़े मण्डपमें अर्थात् सौ हाथके मण्डपमें पच्चास हाथके मण्डपमें और बत्तीस हाथके मण्डपमें यज्ञमण्डपकी मजबूतीके लिये सोलह स्तम्भ से अधिक स्तम्भ भी लगाये जा सकते हैं।

१४-सोलह हाथ के यज्ञमण्डप में भीतरवाले चार स्तम्भ नौ हाथके और बाहरवाले बारह स्तम्भ पाँच हाथ के होते हैं।

१५-मण्डपस्थ स्तम्भों के पाँचवें हिस्सेको भूमिमें गाड़ देना चाहिये।

१६-यज्ञ-मण्डपमें स्तम्भों के लगानेका क्रम यह है कि-यज्ञमण्डप जितना बड़ा हो, उससे आधे प्रमाणके भीतरी चार स्तम्भ और बाहरी बारह स्तम्भ सात हाथ के लगाने चाहिये।

१७-यज्ञमण्डप के स्तम्भ यज्ञिय वृक्षके अथवा बाँसके अथवा अन्य पवित्र वृक्ष के लगाने चाहिये।

१८-यज्ञमण्डप के स्तम्भों की मोटाई सोलह अंगुल, दस अंगुल अथवा यथेच्छ कही गई है।

१९-यज्ञमण्डपके सोलह स्तम्भों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, गणेश, यम, नागराज, स्कन्द (कार्तिकेय) वायु, सोम, वरुण,

अष्टवसु, धनद (कुबेर), बृहस्पति और विश्वकर्मा—इन सोलह देवताओंका स्थापन होता है।

२०-यज्ञ-मण्डपके सोलह स्तम्भों में इस प्रकार रंगीन वस्त्र लगाना चाहिये—मण्डपके भीतरवाले चार स्तम्भोंमें क्रमशः १—ईशान कोणके स्तम्भमें लाल वस्त्र, २—अग्निकोणके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ३—नैर्ऋत्यकोणके स्तम्भमें काला वस्त्र और ४—वायव्य कोणके स्तम्भमें पीला वस्त्र ही होना चाहिये।

मण्डपके बाहरवाले बारह स्तम्भोंमें इन रंगों के वस्त्र होने चाहिये—१-ईशानकोणके स्तम्भमें लालवस्त्र, २-ईशान और पूर्वके स्तम्भके मध्य में सफेद वस्त्र, ३-पूर्व ओर अग्निकोणके स्तम्भके मध्यमें कालावस्त्र, ४-अग्निकोणके स्तम्भमें काला वस्त्र, ५-अग्निकोण और दक्षिणके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ६-दक्षिण और नैर्ऋत्यकोणके मध्यके स्तम्भमेंधूम्र वस्त्र, ७-नैर्ऋत्यकोणमें सफेद वस्त्र, ८—नैर्ऋत्य और पश्चिमके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, ९—पश्चिम और वायव्यकोणके मध्यके स्तम्भमें सफेद वस्त्र, १०-वायव्यकोणमें पीला वस्त्र, ११-उत्तर और वायव्यकोणके मध्यमें पीला वस्त्र और १२-उत्तर और ईशानकोणके मध्यमें लाल वस्त्र ही होना चाहिये।

२१-दश दिक्पाल की दस ध्वजा होती हैं। ये ध्वजा त्रिकोण ही होती हैं।

२२-ध्वजा दो हाथ चौड़ी और पाँच हाथ लंबी होती है। किसी आचार्य का मत है कि ध्वजा एक हाथ चौड़ी और एक हाथ लंबी होती है।

२३-पूर्व दिशामें पीले रंगकी ध्वजा इन्द्रकी होती है तथा इसका वाहन सफेद रंगका हाथी होता है। अग्निकोणमें लाल रंगकी ध्वजा

अग्निकी होती है व इसका वाहन सफेद रंगका मेष (मेढ़ा) होता है।

दक्षिण दिशामें काले रंगकी ध्वजा यमकी होती है तथा इसका वाहन लाल रंगका महिष (भैंसा) होता है। नैर्ऋत्य-कोणमें नील रंगकी ध्वजा निर्ऋतिकी होती है व इसका वाहन सफेद रंगका सिंह होता है।

पश्चिम दिशामें सफेद रंगकी ध्वजा वरुणकी होती है तथा इसका वाहन धूम्र वर्णकी मछली होती है। वायव्यकोणमें धूम्र अथवा हरे रंगकी ध्वजा वायुकी होती है व इसका वाहन काले रंगका हरिण (मृग) होता है।

उत्तर दिशामें सफेद अथवा हरे रंगकी ध्वजा सोमकी होती है और इसका वाहन सुवर्णके तुल्य अश्व (घोड़ा) होता है। ईशानकोणमें सफेद रंगकी ध्वजा ईशानकी होती है और इसका वाहन लाल रंगका बैल होता है।

२४—ब्रह्माकी ध्वजा ईशानकोण और पूर्वके मध्यमें सफेद या लाल रंगकी होती है तथा इसका वाहन सफेद रंगका हंस होता है।

२५—अनन्तकी ध्वजा नैर्ऋत्यकोण और पश्चिम के मध्यमें सफेद रंग की या काले रंगकी होती है और इसका वाहन गरुड़ होता है।

२६—ध्वजाओंको दस-दस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये।

२७—हाथी, मेढ़ा, भैंस, सिंह, मछली, मृग, घोड़ा, बैल, हंस और गरुड़ ये ध्वजाओंके वाहन हैं।

२८—दश दिक्पालकी दस पताकाएँ होती हैं। ये चतुष्कोण (चौकोर) होती हैं।

२९—ध्वजाओंकी तरह पताकाओंका भी रंग होता है।

३०—पताका सात हाथ लंबी और एक हाथ चौड़ी होती है।

३१—पूर्व दिशाकी पताकामें आयुध वज्र होता है। अग्निकोणकी पताकामें आयुध शक्ति अर्थात् तलवार होती है। दक्षिण दिशाकी पताकामें आयुध दण्ड होता है। नैर्ऋत्यकोणकी पताकामें आयुध खड्ग होता है। पश्चिम दिशाकी पताकामें आयुध पाश होता है। वायव्यकोणकी पताकामें आयुध अङ्कुश होता है। उत्तर दिशाकी पताकामें आयुध गदा होती है। ईशानकोणकी पताकामें आयुध त्रिशूल होता है। पूर्व और ईशानकोणके मध्यकी पताकामें आयुध कमण्डलु होता है और पश्चिम और नैर्ऋत्यकोणकी पताकामें आयुध चक्र होता है।

३२—वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अङ्कुश, गदा और त्रिशूल—ये पताकाओंके आयुध हैं।

३३—पताकाओंको दस-दस हाथके लंबे बाँस में लगाना चाहिये।

३४—महाध्वज एक होता है और यह त्रिकोण होता है।

३५—महाध्वज दस हाथका अथवा सात हाथका अथवा पाँच हाथका लंबा होता है और पाँच हाथका अथवा साढ़े तीन हाथका अथवा तीन हाथका चौड़ा होता है।

३६—महाध्वज पचरंगा अथवा चित्र-विचित्र रंगका होता है।

३७—महाध्वजको दस हाथ, सोलह हाथ, इकतीस हाथ अथवा बत्तीस हाथके लंबे बाँसमें लगाना चाहिये।

३८—महाध्वजको यज्ञमण्डप के मध्य में अथवा यज्ञमण्डपके ईशान-कोणमें ही लगाना चाहिये।

३९—यज्ञमण्डप में चार मण्डप-द्वार होते हैं। यह अढ़ाई हाथ चौड़े और तीन हाथ ऊँचे होते हैं।

४०—मण्डप के द्वार (दरवाजे) बल्ली आदिके बनते हैं।

४१—यज्ञमण्डपके चारों दिशाओंके चारों द्वारोंमें चार 'तोरणद्वार' होते हैं। ये चारों तोरणद्वार मण्डपद्वारसे एक-एक हाथ अथवा दो-दो हाथकी दूरीपर ही बनाने चाहिये।

४२—तोरणद्वारोंमें मण्डपके द्वारों की तरह नीचे की ओर लकड़ी (देहली) नहीं होती।

४३—तोरणद्वार बनाने के लिये पूर्वमें पीपल अथवा वट (बरगद) की, दक्षिणमें गूलरकी, पश्चिममें पीपलकी अथवा पाकरकी और उत्तरमें पाकर वट या (बरगद) की लकड़ी होनी चाहिये। यदि चारों द्वारों के लिये उपर्युक्त अलग-अलग लकड़ी प्राप्त न हो सके, तो निर्दिष्ट लकड़ियोंमें से किसी भी उपलब्ध एक लकड़ी से भी तोरणद्वार बनाये जा सकते हैं।

४४—पूर्वद्वार के तोरणमें पीला वस्त्र, दक्षिण द्वारके तोरणमें काला वस्त्र, पश्चिम द्वारके तोरण में सफेद वस्त्र और उत्तर द्वारके तोरण में पीला वस्त्र लगाना चाहिये।

४५—विष्णुयाग में चारों तोरणद्वारों के पर ऊपर क्रमशः पूर्वमें शंख, दक्षिणमें चक, पश्चिममें गदा और उत्तरमें पद्म लगाना चाहिये।

४६—विष्णुयाग में उत्तम मण्डपमें १४ अंगुल लंबा और ३॥ अङ्गुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये। मध्यम मण्डपमें १२ अंगुल लबा और अंगुल चौड़ा शंख तोरणपर गाड़ना चाहिये। अधम मण्डपमें १० अंगुल लंबा और २॥ अंगुल चौड़ा शंख तोरण पर गाड़ना चाहिये।

उपरोक्त विष्णुयज्ञ के उत्तमादि मण्डपके शंखादिके कीलोंका पञ्चमांश तोरण पर गाड़ देना चाहिये व द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिये।

४७-रुद्रयागमें चारों दिशाओंमें लगे हुए चारों तोरणद्वारोंके ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिये।

४८-रुद्रयागमें उत्तम मण्डपमें १३ अंगुल लंबा और ३। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाड़ना चाहिये। मध्यम मण्डपमें ११ अंगुल लंबा और २॥। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाड़ना चाहिये। अधम मण्डपमें ९ अंगुल लंबा और २। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरणमें गाड़ना चाहिये। अधम मण्डपमें २ अंगुल त्रिशूलको तोरणमें गाड़ना चाहिये।

उपरोक्त रुद्रयज्ञके उत्तमादि मण्डपके त्रिशूलादिके कीलोंका पञ्चमांश तोरण पर गाड़ना चाहिये और द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिये।

४९-यज्ञमण्डपके बाहर अट्ठारह कलश होते है। इनमें चार कलश मण्डपके बाहर चारों दिशाओं चारों कोनोंमें रखे जाते हैं और चार कलश चारों विदिशाओंके चारों कोनोंमें रखे जाते हैं और एक कलश पूर्व और ईशानकोणके मध्यमें ब्रह्माका होता है तथा एक कलश पश्चिम और नैर्ऋत्यकोणके मध्यमें अनन्तका होता है। ये दस कलश दशदिक्पालके होते हैं।

मण्डपके चारों द्वारोंपर दो-दो कलश होते हैं, जिन्हें 'द्वारकलश' भी कहते हैं। इस प्रकार यज्ञमण्डपके अट्ठारह कलश होते है।

५०-यज्ञमण्डप के शिखरका प्रमाण प्रायः किसी भी कुण्डमण्डप-ग्रन्थकार ने नहीं लिखा है। अतः महर्षि कात्यायनके 'अर्थात् परिमाणम्' इस प्रमाणके अनुसार मण्डपानुकूल ही शिखरका निर्माण करना चाहिये।

५१-यज्ञमण्डपके भीतर ऊपर छतकी ओर चारो तरफ सफेद वस्त्रका चँदवा लगाना चाहिये।

५२-स्त्रेभोंको वस्त्रों ढकना चाहिये। यह शारदातिलक मत है।

५३-मण्डपके मध्यभाग ऊपर वाले हिस्से को चारों तरफ से आच्छादित करना चाहिये। यह हेमद्रिका को भी इष्ट है। परन्तु वर्तमान समय में मध्य भागके स्तंभोंपर टेढ़ी वल्ली शिखाकार बनाते हैं। ऐसी भी परम्परा है।

कोटिहोम पद्धतौ—'मध्य स्तंभ चतुष्टय यस्योपरिशिखरवदुच्चता कार्यति संप्रदाय विदः'।

स्व० पं० दौलतराम गौड़ वेदाचार्य

॥ समाप्तः ॥

संक्षिप्त-परिचय

'कुण्डनिर्माण स्वाहाकार पद्धति' नामक इस पुस्तक के संकलन-कर्ता व संशोधक-संपादक श्री अशोक कुमार गौड़, उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा सम्मानित, भारत के मूर्द्धन्य विद्वान्, स्वर्गीय पण्डित दौलत राम जी गौड़ वेदाचार्य के कनिष्ठ पुत्र है।

वर्तमान समय में आप बी. ए. द्वितीय वर्ष के छात्र है। अपने पिताजी की विरासत में आपने वेद व कर्मकांड का अल्प अध्ययन किया, उनके आकस्मिक निधन के पश्चात् काशी के मूर्द्धन्य विद्वानों के आचार्यत्व में अध्ययन कर रहे हैं। आपने नवग्रह रहस्य, विधान-प्रकाश-पद्धति, दुर्गोपासनप्रयोग सहित अभी तक २० पुस्तकों की रचना व हिन्दी टीका की है।

हम आपके उज्वल भविष्य की कामना करते है।

प्रवक्ता—
गहमर इण्टर कालेज
गहमर, गाजीपुर
उत्तर प्रदेश

भवदीय
आनन्दशंकर शर्मा
एम० ए०
(हिन्दी-संस्कृत)

श्री अशोक कुमार गौड़ द्वारा लिखित–टीकाकृत किताबें–

१–विधान प्रकाश पद्धतिः

भाषाटीका मूल्य ४०.००

२–कुण्ड निर्माण स्वाहाकार पद्धतिः

हिन्दी सहित मूल्य २०.००

३–गणपति प्रतिष्ठा प्रयोगः

भाषाटीका मूल्य ८.००

शीघ्र प्रकाशित हो रही हैं–

४–दुर्गापूजा पद्धतिः

भाषाटीका (छप रही है)

५–विष्णु याग प्रयोगः

भाषाटीका मूल्य ४०.००

लेखक-टीकाकार—स्व० वेद प्रकाश शास्त्री गौड़

संशोधक-संपादक—श्री अशोक कुमार गौड़

श्री दौलतराम गौड़ वेदाचार्य द्वारा रचित व टीकाकृत ग्रंथ—

१—श्रीमद्भागवत्

सरस्वती-टीका मूल्य १८०.००

२—निर्णय-सिन्धु

सरस्वती-टीका मूल्य १८०.००

३—प्रभुविद्याप्रतिष्ठार्णव

सरस्वती-टीका मूल्य ६०.००

४—ग्रहशांतिप्रयोग

सरस्वती-टीका मूल्य ३०.००

५—प्रतिष्ठा-मयूख

सरस्वती-टीका मूल्य २०.००

प्रकाशक

ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार

कचौड़ीगली, वाराणसी